आंकड़ेबाजी

[व्यंग्य संग्रह]

बिहारी दुबे



दिनिशा प्रकाशन

प्रथम संस्करण नवम्बर, 1984

बिहारी दुबे

प्रकाशक
दिनिशा प्रकाशन
1594, नेपियर टाउन
जबलपुर (म० प्र०) 482-001

आवरण
बिबग्योर इंटरनेशनल, जबलपुर

मूल्य
सजिल्द 18 रुपये / पेपर बैक 10 रुपये

मुद्रक
केसरवानी प्रेस, प्रयाग

क्रमांक 004 84

AANKREBAJI—Satires by Bihari Dubey

परम पूज्य पिता जी,

प० श्री भैयालाल दुबे जी

को सादर

प्रकाशक की ओर से–

मध्यप्रदेश की वीरगाथाओं की सुगन्धी छिपाये बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जन्मे श्री बिहारी दुबे प्रदेश के चर्चित युवा व्यंग्यकारों के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। पिछले कई वर्षों में व्यंग्य लेखन सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों के खिलाफ एक जेहाद के रूप में अवतरित हुआ है। सटीक व्यंग्य रचनाओं में समाज क्षोभ पैदा कर जनमानस के विवेक और उसमें रोष को उद्वेलित कर सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला रखता है। बिहारी दुबे के कुछ व्यंग्य इसी श्रेणी के हैं। प्रस्तुत संग्रह व्यंग्यकार का पहला संकलन है।

●●●

● ● ● अनुक्रम

1	अधिकार बनाम कर्तव्य	1
2	बयान एक मौके का —मदम राष्ट्रीय पर्वो	7
3	ढँपूराम द्वारा मानहानि का दावा	10
4	सगला सू का	15
5	खिसियानी बिल्ली खम्भा नोच	18
6	एक प्रदर्शनी जो हमारे शहर मे लगी	21
7	बाजियो म बाजा आरकेबाजी	25
8	कथा एक मौलिक चिन्तन की	30
9	अथ अफसर चरित्रम् भाष्यते	34
10	एक शोध प्रलाप—मिर्ची पर	37
11	बाज आये ऐसे अफसरो से	41
12	हडताल ऋतु आयी रो सखि	46
13	विमोचन समारोह का एक रहस्य	50
14	खोज एक किराये के मकान का	53
5	अभिनन्दन	56
16	मैं तो चला मरने	61
17	नेताजी की नवयात्रा	65
18	चमचा तेरे रूप अनेक	70
19	न्याय	74
20	जागृति आयी आयी नही आयी	77
21	नादां से दोस्ती	81
22	चक्कर इंटरव्यू का	89
23	जरूरत है एक राम की	93
24	झूठ बोले कौआ काटे	95
25	मौत एक गणितज्ञ की	98

अधिकार बनाम कर्त्तव्य

कुछ ही समय पहले की बात है जब हमारे नगर में एक महापुरुष का आगमन हुआ था। उनका शरीर काफी हृष्टपुष्ट था। उनके किसी पहलवान जैसे तन्दुरुस्त शरीर पर स्वच्छ-सफेद धुले धोती-कुरता सज्जित रहते। पैरों में खड़ाऊ, कंधे पर रामनामी दुपट्टा और स्त्रियों की तरह लम्बे किन्तु घुंघराले बाल, पीठ पर लहराते रहते। उनके मुख पर अपूर्व तेज हमेशा विद्यमान रहता था। कुल मिलाकर अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व था उनका।

उन्हें हमारे नगर में पधारे, एक माह से भी अधिक समय बीत चुका था। रोज रात में उनकी महफिल जमती। वे धाराप्रवाह प्रवचन देते, जिसे श्रोतागण पूरी तन्मयता के साथ सुनते। दिन में भी वे मिलने वालों की भीड़ से घिरे रहते।

लोग उनके विचारों से काफी प्रभावित थे और अक्सर उनकी और उनके विचारों की प्रशंसा करते रहते। इस प्रकार उनकी कीर्ति हम तक पहुँचने में कामयाब हुई। परिणामस्वरूप किसी लोहे के टुकड़े की तरह, हम चुम्बक अर्थात् उन महापुरुष की ओर खिंचने लगे। अंततः एक रात हम उनके दरबार में जा ही पहुँचे।

उस समय महफिल अपनी भरपूर जवानी पर थी। वे अपनी ओजपूर्ण वाणी में फरमा रहे थे—"ईश्वर और स्वयं मानव द्वारा गठित विभिन्न अधिकृत संस्थाओं से मानव को अपरिमित अधिकार प्राप्त हुए हैं किन्तु नादान मानव, अपने अधिकारों से अनभिज्ञ, नाना प्रकार के दुख भोगता है।

"मैं मानव को इस प्रकार अज्ञान वश दुख भोगता देखकर, अक्सर दुखी हो जाया करता था। इसी कारण अध्ययन पूरा कर मैंने अपना जीवन मानव जागृति के लिए अर्पित कर दिया।"

एक पल रुककर उन्होंने एक उचटती सी नजर सामने बैठे अपार जनसमूह पर डाली। शायद वे जानना चाहते थे कि जनसमुदाय उनकी बात ध्यान में सुन भी रहा है अथवा नही। तसल्ली हो जाने पर उन्होंने पुन बोलना शुरू किया—

'मैंने मानव-जागृति का व्रत लिया तो अपने इस पुण्य काम में सफलता के प्रति कुछ शंकित था किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि मुझे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने में जन-जन का अपूर्व स्नेह और सहयोग मिला। इसी स्नेह का सम्बल है जो मुझे आगे और आगे बढ़ने की प्रेरणा और साहस देता है।

"प्रिय बन्धुओ! आप सब विभिन्न वर्गों से आए हुए हैं। स्वाभाविक रूप से आपने, स्वयं के तथा अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए विभिन्न व्यवसायों को अपना रखा होगा। किन्तु मैं जानता हूँ कि आप में से अधिकांश को अपने व्यवसाय में आशानुकूल सफलता नही मिल पा रही है। कभी सोचा है आपने क्यों? आप अथक परिश्रम और लगन के साथ कार्य करते हैं, फिर क्या सफलता नही मिलती आपको? उन्होंने मौन रखकर एक प्रश्नवाचक नजर जनसमुदाय पर डाली। चारों तरफ सन्नाटा पसरा था। उन्हें अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। उत्तर की अपेक्षा भी नही की थी उन्होंने। कुछेक पलों को चुप्पी के बाद उन्होंने गुरु-गम्भीर और प्रभावपूर्ण स्वर में कहा—"इसका एकमेव कारण है, आपका अपने अधिकारों से अनभिज्ञ होना। आप अपने अधिकार नही जानते, मगर चिन्ता की कोई बात नही। मैं आज आपको आपके अधिकारों से परिचित कराऊँगा। दत्तचित्त होकर सुनिये।"

हम उनके अब तक के वक्तव्य से, जो कि वास्तव में मात्र भूमिका ही थी, सम्मोहन की अवस्था में आ चुके थे। अन्य श्रोताओं का भी यही हाल था। शायद वे यही चाहते भी थे। श्रोताओं को इस तरह मिट्टी का माधो बने देखकर वे प्रसन्न हुये और पुन बोलने लगे—"मानव अधिकारों से सुसज्जित होकर ही धरा पर अवतरित होता है। निरे बचपन में एक बच्चे का अधिकार होता है कि वह रूठे रूठकर अपने माता-पिता से अपनी हर वह बात मनवा ले जो वह चाहता है। यही बच्चा कुछ समय बाद स्कूल जाता है, फिर कालेज। कालेज

स्टूडेन्ट के रूप में उसे अधिकार होता है कि वह अध्ययन के नाम पर माता-पिता से रकम ऐंठे, और फिर इस रकम के दम पर मटरगश्ती करे, फिल्म देखे, बीडी-सिगरेट-शराब का सेवन करे। मौका मिले तो शबाब पर भी हाथ साफ करे। हर किसी पर अपना रोब गालिब करे। इसके लिए गुण्डों की तरह मारपीट करे। अपने और अन्य कालेजों में बात-बेबात हड़ताल करे-करवाए। तोड़फोड़, आगजनी में हिस्सा बँटाए, परीक्षा भवन में चाकू की नोक पर नकल करे और इसी प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण होकर कर्मक्षेत्र में कूद पड़े।

'अब वह एक नौजवान है। वह अपनी आवश्यकताओं-आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए एक विद्यार्थी के अधिकारों का प्रयोग नहीं कर सकता। इसलिए उसे अर्थोपार्जन हेतु कोई न कोई व्यवसाय अपनाना अनिवार्य है। इसके लिए उसे अपने मां-बाप की शोहरत का लाभ उठाने का अधिकार प्राप्त है।

"यदि उसके पिता का समाज और शासन-तंत्र पर अच्छा प्रभाव है, तो वह सरकारी अफसर बन सकता है। अफसर बनते ही उसे, अपने मातहतों को बात-बेबात डपटने, जब-तब दौरे पर रहकर भत्ता कमाने, विभागीय वाहन का निजी कार्यों के लिए सदुपयोग करने, भृत्यों से सेवा करवाने, झूठ को सच और सच को झूठ प्रमाणित कर देने, और विभिन्न कार्यों के लिए स्वीकृत राशियों को डकार जाने के अधिकार प्राप्त हो जाएँगे।

"यदि उसके पिता धनवान् हैं और अपने अर्जित धन का एक मामूली हिस्सा दाव पर लगाने के लिए तैयार हैं तो वह व्यापारी बन सकता है। व्यापारी के रूप में उसे माल छिपाकर, बाजार में माल की कमी के बहाने, छिपाए हुए माल की कई गुनी कीमत वसूलने का अधिकार मिल जाता है। मिलावट करना और टैक्सों से बचने के लिए, दो तरह के खाते रखना तो एक व्यापारी के मौलिक अधिकार हैं।

'यदि नौजवान के नक्षत्र प्रबल हैं, तो वह पुलिस अफसर बन सकता है। पुलिस अफसर के अधिकार अपरिमित हैं। कानून नाम की बंदरिया उसके इशारे पर नाचती है। वह कानून का भय दिखाकर किसी से भी भारी रकम ऐंठ सकता है। लाठीचार्ज करना, आंसू गैस छोड़ना, निहत्थों पर गोलियाँ

चलाना, ब्लैकमार्केटियरों, स्मगलरों और इसी कोटि के पुण्य कर्मियों से मासिक चन्दा वसूलना आदि पुलिस अफसर के प्रमुख अधिकार हैं।

"यदि वह धाराप्रवाह बोलने और स्थान, समय और परिस्थिति के अनुकूल रंग बदलने की क्षमता रखता है तो वह नेता बन सकता है। इसमें उसे न केवल वाहवाही मिलने के बल्कि लाखों में खेलने के भी चांस मिलेंगे। एक नेता को भाषण देने, आत्मा की आवाज पर दल बदलने, शासकीय कर्मचारियों को अपने हाथ की कठपुतली बनाने और येन-केन प्रकारेण कुर्सी हथियाने का अधिकार होता है।

"अपने संतुलित-असंतुलित भाषणों, रंग बदलने की क्षमता और तिकड़मबाजी के सहारे के बल पर कोई भी नेता चुनाव जीतकर शासक बन सकता है। शासक के अधिकारों को गिनाना, सरकारी लाइट के सामने मोमबत्ती जलाने जैसा है। शासक दिन को रात और रात को दिन, साबित करने तक का अधिकार रखता है। टैक्स लगाना और समाज के सभी वर्गों की ऐसी-तैसी करना शासन के मौलिक अधिकार होते हैं।

"और कुछ न बन पाए तो पत्रकार अथवा साहित्यकार बन जाना तो कहीं गया नहीं। जहां एक पत्रकार को अफवाह उड़ाने, समाचारों को तोड़-मरोड़ कर छापने, हर स्थान पर बटिकट घुसकर तमाशा देखने, और कारनामों को उजागर कर देने के नाम पर लोगों से रकम ऐंठने आदि का अधिकार होता है। वहीं एक साहित्यकार को साहित्य के नाम पर गुटबंदी करने, छद्मनाम से अश्लील लेखन करने, फिर प्रत्यक्षतः उसकी भर्त्सना करने, शासकीय पुरस्कारों की आलोचना करते हुए उन्हें प्राप्त करने हेतु शासकों के चरण पखारने आदि का पूर्ण अधिकार होता है।"

वे एक क्षण के लिए चुप हुए, उनके अधरों पर एक मनमोहक मुस्कान थिरकी। मुस्कान समेट कर वे फिर बोलने लगे— "वैसे प्रकाशक इनका भी बाप होता है, जो कल्पित नामों से पुस्तकें प्रकाशित करने, पुस्तकों के लागत मूल्य से तिगुनी-चौगुनी कीमतें वसूलने लेखकों की रायल्टी बिना डकार लिए हजम करने आदि के अधिकारों का स्वामी होता है।"

वे बानन-बोला रर और जनसमुदाय म उपस्थित स्त्रीवर्ग पर एक नजर डालकर मुस्कुरान लगे। इस बार उनकी मुस्कराहट पहले से भी अधिक मोहक और गहरी थी। कुछ क्षण इसी प्रकार मुस्कुरात रहने के बाद उन्होंने प्रसन्न स्वर मे कहा—"अगर वह मानव स्त्री जाति का है तो उस पूर्वकथित काई भी काय करने की आवश्यक्ता नही है। उसके लिए यही पर्याप्त है कि वह किसी सामर्थ्यवान पुरुष की पत्नी बन जाए। मेरे विचार म पत्नी सर्वाधिक अधिकारा से युक्त होती है, और वह अपन अधिकारा के प्रति हर पल सचेत रहती है।"

इतना कहकर उन्होंने गर्वयुक्त दृष्टि, अपने ओजस्वी वक्तव्य मे पूरी तरह खाए जनसमुदाय पर डाली। उनके अधरो पर एक सतुष्टिपूण मुस्कान थिरकी और नत्रो म तज चमक आ गई। उन्होंने इसी मुद्रा म जनसमुदाय को ध्यानावस्था स उबारत हुए कहा—"तो इस प्रकार मानव को अनेकानक अधिकार प्राप्त हैं। आपन जो व्यवसाय अपनाया है, उसके अनुरूप आप प्राप्त अधिकारो का सदुपयोग कीजिए और अपना जीवन सफल बनाइए। यदि आप सफल होत ह तो निश्चय ही, यह मेरी भी सफलता होगी।"

जन-समुदाय का ध्यान भग हुआ और प्रत्यक व्यक्ति अपन अधिकारो क प्रयोग हतु आतुर-सा अपने-अपन घर की ओर लपकने लगा। उधर वे महापुरुष अपन आसन से उठकर अपन विश्राम गृह की ओर बढे।

उनक प्रभावशाली वक्तव्य न हमारा नादान मस्तिष्क चचल हो उठा था और अनक प्रश्न हमार मस्तिक को खुला मदान समझकर, वहा कबडडी खेलना शुरू कर चुक थे। सो हम उठकर उनक पीछे पीछे चल दिए। अचानक ही पलटकर उन्होंने हमारी ओर दखा और अपनी प्रश्नवाचक नजरे हमार थोबडे पर टिका दी। हम पहल तो बौखलाए फिर साहस बटोरकर बोले—'महाराज आपने जा बाते कही है, उनम प्रभावित लोग, असामाजिक कार्यों मे सलग्न होकर समाज और दश को हानि पहुँचा सकत है। आपको उन्हे उनक कतव्य भी समझान चाहिए।"

व कुछ इस तरह मुस्कराए जैसे कोई नानी बाप अपन नादान पुत्र क किसी बचकाना प्रश्न को सुनकर मुस्कराता है। फिर बोल—"लगता है तुम देखन मे वयस्क होकर भी अभी नासमझ हो भाई! अपन अधिकारो का समुचित प्रयाग

ही तो कर्त्तव्य है, और मैंने उन्हें उनके अधिकारों से परिचित कराकर, अपने कर्त्तव्य का पालन किया है।" कहते हुए वे पलटकर आगे बढ़ गए। कमरे में प्रविष्ट होकर उन्होंने अलमारी से एक सीलबंद बोतल और एक बिल्लौरी कांच का गिलास निकाला। फिर बोतल का सील भंग करने में जुट गए।

हम अभी कुछ और प्रश्न करना चाहते थे, किंतु उनका बांया हाथ निषेधात्मक मुद्रा में उठा देखकर चुपचाप कमरे से बाहर निकल आए।

○ ○ ●

बयान एक कौए का—संदर्भ राष्ट्रीय पक्षी

महामहिम राष्ट्रपति जी,

सादर प्रणाम

आशा है, आप अपने एयर कंडीशण्ड राष्ट्रपति भवन मे, कबूतरो की गुटर-गू का मधुर सगीत सुनते हुए, आनदपूर्वक होंगे। किन्तु श्रीमान् जी, मैं अत्यन्त दुखी हूँ। मेरे दुख का कारण है, भारत की सरकार का कपटपूर्ण निर्णय। जी हा भारत सरकार ने राष्ट्रीय पक्षी के चयन मे पक्षपात पूर्ण रवैया अपनाया। राष्ट्रीय पक्षी के चयन के पूर्व किसी प्रकार की घोषणा न करके, अन्य पक्षियो को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर नही दिया गया और गुप-चुप मोर के पक्ष मे अन्यायपूर्ण निर्णय दे दिया गया।

चयन की प्रक्रिया, फिर चयन के पश्चात् भी, बरती गई गोपनीयता ही, इस पक्षपात का सबसे बडा सबूत है। इस मामले मे गोपनीयता बरती गई, इसके लिए यही कहना पर्याप्त होगा कि मुझ जैसे जागरूक पक्षी को भी इस निर्णय की जानकारी वर्षों बाद मिल सकी। तो महामहिम ! मुझे भारत सरकार के निर्णय पर मात्र आपत्ति नही, घोर आपत्ति है। कोई भी समझदार पक्षी इस निर्णय को सही नही मानेगा।

"मैं जानता हूँ कि आजकल सत्य को सत्य सिद्ध करने के लिए भी सबूत प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है। सो मैं अपनी बात स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख मुद्दे आपके विचारार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।"

"सबसे पहले रूप-रंग को ही लीजिए। पता नही शासन ने किसके बहकावे मे आकर मोर को खूबसूरत पक्षी मान लिया। मेरी समझ मे नही आता कि अजीब बदरंग पक्षी मोर, जिसकी पूँछ अनेक रंगो से रंगी हुई होती है और उस झाड़ूनुमा पूँछ की प्रत्येक सींक के सिरे पर बड़े-बड़े बैंगनी धब्बे होते हैं, किस प्रकार निर्णायको को खूबसूरत दिखाई दिये। यदि पूँछ के अनेक रंगों के

आधार पर ही उसे खूबसूरत माना गया है तो हुजूर इसी आधार पर गिरगिट को राष्ट्रीय जन्तु घोषित किया जाना चाहिए क्योंकि गिरगिट ऐसा जीव है, जो प्रत्येक मौसम के अनुरूप अपना रंग बदल सकता है। फिर यह भी तो है कि उसकी विशेषता राजनीति के कर्णधारों में भी पाई जाती है। यदि गिरगिट को छोड़ भी दें और केवल पक्षियों की ही बात करें तो 'कठफोड़वा' भी तो रंग-बिरंगा होता है। फिर मोर में ही कौन-सी ऐसी खास बात है कि उसे कठफोड़वा पर तरजीह दी गई ?

'मोर के सर्वथा प्रतिकूल मेरा रंग तो 'सूरदास की कारी कमरिया चढ़ै न दूजो रंग' का समर्थन करता है। मेरा रूप भी कम से कम मोर से तो अच्छा ही है।

"मोर बात बे-बात टिटियाना शुरू कर देता है। उसकी आवाज ठीक वैसी ही कर्णकटु प्रतीत होती है जैसी कि फटे बाँस को पीटे जाने से उत्पन्न होने वाली आवाज। जबकि मेरी "काँव-काँव" सुनकर तो सारा प्राणिजगत प्रसन्न हो उठता है।

"मोर इतना बेवकूफ होता है कि वह बादलों को देखकर इतना प्रसन्न हो उठता है कि सब कुछ भूलकर बेढंगा नाच नाचने लगता है। नाचते समय वह यह भी भूल जाता है कि उसका कोई शत्रु उसके आसपास ही, उसे बंदी बनाने के लिए घात लगाए बैठा है। जबकि मैं अपने चौकन्नेपन के लिए जगत प्रसिद्ध हूँ। बुद्धिमत्ता में तो किसी से कम हूँ ही नहीं। हमारे आदिपुरुष महर्षि 'काक-भुशुण्डि' का नामोल्लेख आपको अनेक पुराणों में मिल जाएगा।

'मोर और तोते जैसे व्यर्थ टें-टें करने वाले पक्षियों से मुझे सख्त घृणा है। इसीलिए मुझे जब भी कोई तोता टिटियाते मिल जाता है तो मैं उसके पंख नोच डालता हूँ और अगर भरपूर अवसर मिला तो उसकी इहलीला भी समाप्त कर देता हूँ। आखिर उस जैसे कायर और बेहूदा प्राणी की धरती पर आवश्यकता ही क्या है। अलबत्ता मोर जैसे भारी-भरकम पक्षी का मैं कुछ भी बिगाड़ नहीं पाता इसका मुझे अफसोस है।

मोर के पास अक्ल और शक्ल की विशेषताएं तो है ही नहीं, वह पक्षी-सुलभ गुण अर्थात् उड़ने में बेहद कच्चा होता है। यह भी कोई बात हुई कि बड़े ताव से उड़ने के लिए पर तौले और चंद मीटर की उड़ान के बाद पच्च

से जमीन पर आ गिरे। मुझे देखिए पूरी एक हजार एक सौ निन्यानबे उड़ानें भरना जानता हूँ। आपने मेरी और राजहंस की उड़ान प्रतियोगिता की कहानी तो पढ़ी ही होगी। पर उस कहानी के अंत पर न जाइए। वह तो कथाकार की शरारत है। वास्तविकता यही है कि राजहंस ही नदी में डूब रहा था। वह तो मैंने दया करके उसे बचा लिया था वरना—

'यही बस नहीं हो जाती, श्रीमान्। मेरे गुणों का तो पार ही नहीं है। यदि मैं अपने सारे गुणों का बखान करने लगूँ तो श्रीमद्भागवत से भी मोटे ग्रंथ की रचना हो जाएगी। फिर आत्मप्रशंसा करना भी तो अच्छा नहीं लगता। इसलिए मैं अपने उस रूप की चर्चा करते हुए अपनी बात खत्म करना चाहूँगा, जिसे आपकी मानव जाति, अपने पुरखों के रूप में पूजती है। जब मानव अपने पुरखों का श्राद्ध करते समय उन्हें पुकारता है तो वे मेरा ही रूप धारण करना पसंद करते हैं और मेरे रूप में ही अपनी संतानों द्वारा अर्पित भोजन-सामग्री ग्रहण करते हैं। इस प्रकार मैं उन्हें अपना रूप धारण करने की अनुमति देकर उनके साथ-साथ संपूर्ण मानव जाति को कृतार्थ करता हूँ।

'अब मैं, मैं यह भी स्पष्ट कर देना उचित मानता हूँ कि मैंने अपने गुणों पर कभी घमंड नहीं किया। मैं तो समदर्शी हूँ और सबको एक आँख से देखता हूँ। कर्म किए जाता हूँ—फल की चिंता नहीं करता। अर्थात् भगवान कृष्ण का सच्चा "फॉलोअर" हूँ। हुजूर अधिक—लिखकर आपके आराम में खलल नहीं डालना चाहता। उपरोक्त तथ्यों से आप मेरी बात समझ जायेंगे। फिर भी यदि आप मेरे बारे में और भी कुछ जानना चाहें तो मैं आपको पूर्ववर्ती हिंदी कवियों की काव्य-कृतियों का अध्ययन करने का सुझाव दूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप अपनी न्यायप्रियता का सबूत देंगे तथा उपरोक्त तथ्यों के आधार पर एक 'आर्डिनेन्स' जारी कर मोर को राष्ट्रीय-पक्षी की आसंदी से धक्का मारकर गिराते हुए मुझे, मेरा प्राप्य, प्रदान करने की घोषणा करेंगे।'

अनेक काँव-काँव सहित अवदीय,

पक्षी शिरोमणि काक उर्फ कौआ उर्फ ... उर्फ

० ० ०

ढेंचूराम द्वारा मानहानि का दावा

क्षीरसागर का सभागृह खचाखच भरा था। लक्ष्मी जी विष्णु भगवान के पाँव दबाने का ढोंग करती हुई ऊँघ रही थीं। गरुण शेष-शय्या से थोड़ा-सा अलग हटकर, अफीम के गोले के प्रभाव में अटागफील होकर दीवार से सिर टिकाए खर्राटे भर रहा था। कुछ भाड़-किस्म के देवता, विष्णु भगवान की मस्का-पालिश का प्रयास करते हुए विरदावलि गा रहे थे। उनके गायन के शोर से सभागृह बाकायदा मच्छी-बाजार बना हुआ था। फिर भी विष्णु भगवान खर्राटा मारते हुए किसी वृंदा के सपने में डूबे हुए थे।

एकाएक जब सभागृह के द्वार की ओर से "ढेंच-ढेंचू" का तीव्र स्वर और सुदर्शन चक्र के दहाड़ने का तीव्र स्वर सुनाई दिया तो देवताओं के गायन को ब्रेक लग गया। लक्ष्मी जी ऊँघना बन्द कर तेजी से विष्णु भगवान के पाँव दबाने लगी जिससे तिलमिलाकर विष्णु भगवान ने खर्राटे मारना बंद किया और अंगड़ाई लेते हुए अचकचाकर सभागृह के द्वार की ओर देखने लगे।

एक क्षण भी न हुआ था कि ढेंचूराम चौकड़ी भरते हुए सभागृह में प्रविष्ट हुए। उनके पीछे-पीछे अपनी ठुड्डी दोनों हाथों से दबाए सुदर्शन चक्र भी दौड़ता हुआ सभागृह के भीतर आ गया। विष्णु जी ने जब यह आलम देखा तो कुछ घबराए हुए से बोल उठे— यह क्या तमाशा हो रहा सुदर्शन ?"

सुदर्शन चक्र कुछ बोल पाता कि ढेंचूराम अपनी जगह पर अटेन्शन की मुद्रा धारण करते हुए आजिजी के साथ बोलने लगे—'माई बाप! बेअदबी की मुआफी चाहता हूँ। साथ ही यह भी अर्ज करना चाहता हूँ कि आपका जो यह चौकीदार है न, क्या नाम है हाँ सुदर्शन, बड़ा बदतमीज है हुजूर। मैं श्रीमान् के पास फरियाद लेकर आना चाहता था किन्तु इसने मुझे द्वार से ही टरकाना चाहा। मजबूर होकर मुझे सभागृह में इस तरह प्रविष्ट होना पड़ा।" ढेंचूराम को

बात बीच म ही काटते हुए सुदर्शन चक्र ने लगभग कराहते हुए कहा "प्रभु, मृत्युलोक का यह प्राणी बडा खतरनाक है। इसने सभागार म अनाधिकृत प्रवेश करने की कोशिश की तो मैंने इसे रोका। इसने मेरे रोकने की परवाह किए बिना एक दुलत्ती झाडी और अशिष्टता पूर्वक चौकडी मारते हुए सभागृह म घुस आया। इसने विष्णु लोक का अनुशासन भी भग किया है प्रभु और दुलत्ती झाडकर मुझे चोट पहुँचाई है। यह देखिए" इतना कहकर सुदर्शन चक्र ने अपनी ठुड्डी पर से हाथ हटा लिए। सभी ने देखा कि सुदर्शन चक्र का थोबडा डबल रोटी बन चुका था।

विष्णु महाराज ने व्यर्थ विवाद समाप्त करने की गरज से सुदर्शन चक्र को बाहर भेज दिया। फिर ढेंचूराम की ओर उत्सुक निगाहो स देखा तो ढेंचूराम ने विनम्रतापूर्वक कहा—"हुजूर अगर इजाजत हो तो यह खाकसार कुछ अर्ज करे।"

'अवश्य-अवश्य! बेधडक होकर कहो क्या कहना चाहते हो तुम?" विष्णु भगवान ने ढेंचूराम को आश्वस्त करते हुए कहा।

'माई लाड, मृत्यु लोक मे मानव नामक एक भयंकर जाति होती है। इस जाति के जन्तु, अपनी खुराफाती खोपडी के कारण पृथ्वी के अन्य जीवो को तुच्छ समझते है और जब-तब उनका अनादर करते है। और हम तो जैसे यह अनादर सहने के लिए ही धरा पर पैदा हुए हैं। यह अनादर हमारी सहनशक्ति म बाहर हो गया है हुजूर। सो आपके न्यायालय मे मानहानि का दावा दायर करने आया हूँ, बन्दापरवर।"

'हमारे न्यायालय म दावा दायर करने का रिवाज नही है। हम तुरन्त सुनवाई और अविलम्ब फैसला करने म विश्वास करते है, इसलिए तुम्हे जो कुछ भी कहना है खुलकर कहो। क्या अभियोग लगाना चाहते हो तुम मानव जाति पर।—गरुड'

स्वय को पुकारे जाने पर, गरुड ने आखे मिचमिचाते हुए विष्णु भगवान की ओर देखा। फिर उठकर दोनो हाथ जोड खडा हो गया, तो विष्णु जी ने आगे कहा—"गरुड तुम अभी मृत्यु लोक जाकर मानव जाति को मेरा आदेश दो कि वे तुरन्त अपना प्रतिनिधि भेजें ताकि ढेंचूराम के मामले की सुनवाई प्रारम्भ हो सके।" गरुड तेजी से सभागृह से बाहर निकल गया और कुछेक पलो मे एक

मानव के साथ सभागृह म लौट आया। मानव प्रतिनिधि का न्यायालय म उपस्थित देव विष्णु भगवान न ढेंचूराम से कहा—"हां, अब तुम अपना बयान शुरू करो।" ढेचूराम ने विनीत स्वर मे कहना प्रारम्भ किया—"मीलार्ड! मैं मृत्युलोक की गदभ जाति का एक गरीब प्राणी हूँ। मेरी जाति मृत्युलोक म हमेशा उपेक्षित रही है। विशेष रूप स मानव जाति न हमारी विपन्नता का भरपूर लाभ उठाया। हमारी सेवाओ क बदले हम पुरस्कृत करने के स्थान पर हमे पग-पग पर अपमानित किया गया—"

मानव प्रतिनिधि जो मृत्युलोक का सफलतम वकील था न ढेचूराम क कथन का प्रतिवाद करना चाहा—'मीलार्ड! यह बकवास करता है। मानव-जाति जसी विकासशील जाति पृथ्वी पर दूसरी नही है। यह जाति सभी को समान दृष्टि स देखती है—"

ढचूराम न एक जोरदार 'ढेचू-ढेचू' की तो मानव प्रतिनिधि सिटपिटाकर चुप साध गया। तब ढेचूराम न कहा—'यह मानव एकदम सफेद झूठ बोल रहा है। प्रभु पृथ्वी पर इसका पशा ही यही है। सुनिए प्रभु! हम गदभ, बहद शान्तिप्रिय और सतोषी जीव है। हम अपन स्वामी जो अक्सर मानव ही होता है, क लिए अपना सब कुछ अर्पित कर देत हैं उसकी प्रत्येक मनमानी सहत है। लेकिन माई-बाप हम न तो कोई सुविधा दी जाती है। यहाँ तक कि हम हमारा प्रिय ढेचू राग अलापने तक की छूट नही दी जाती है। और न ही हम ट्रेड यूनियन बनाने की अनुमति दी जाती है। अगर हम इस तरह की कोइ कोशिश करत है तो हम डडो म पीटकर हम पर बबरतापूण अत्याचार किया जाता है। यह तो मात्र शारीरिक उत्पीडन की बात हुई जिस हम जैस-तैस सहन कर ही लेते ह। कि तु माई बाप, य लोग हम जो मानसिक यातनाए देत हैं व असह्य हैं।

ढचूराम अब तक भाषण की मुद्रा म आ चुक थ और किसी ओजस्वी 'ट्रेड यूनियनस्ट' की तरह पूरे जोशो-खरोश म बोलन लगे थे 'यह कहाँ का न्याय है कि हम जैस कमठ जीवो की तुलना आलसी मानव स की जाए। हमारी स्वामी भक्ति का बवकूफी माना जाए। जब कोइ मानव मूखतापूण हरकत करे

तो उसे गधा कहकर सम्मानित करते हुए हमारी सम्पूर्ण जाति का अपमान किया जाए, जब कोई मानव बेसुरा गला फाड़ने लगे तो उसकी इस बेहूदा हरकत की तुलना हमारे सुकण्ठ के सुरीले गायन से करते हुए 'गधे सा रेंकना" कहा जाए हमारे सिर पर सींग न होना जो हमारी शांतिप्रियता का प्रतीक है यह बेहूदा लोकोक्ति 'गधे के सिर से सींग की तरह गायब" प्रचारित कर मखौल उड़ाया जाए हमारे द्वारा आत्म रक्षार्थ अथवा मौज में झाड़ी गई दुलत्ती को बेवकूफाना हरकत माना जाए। आप ही बताइए प्रभु, क्या प्रसन्नता का इजहार करना अथवा आत्मरक्षा का प्रयास करना बेवकूफी है? हरगिज नहीं प्रभु हरगिज नहीं

यह कहा जाय है प्रभु कि मानव जाति अपनी बेवकूफियों को छिपाने के लिए हमारी सज्जनता की आड़ लेकर हमें जलील करे और स्वयं को पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माने। और प्रभु हद तो यह है कि अपने इस कुकृत्य में ये लोग आपको भी सहभागी बना लेते हैं।

अब हुजूर आप ही न्याय कीजिए और मुझे गर्दभ जाति के सम्मान की रक्षा का वचन दीजिए।"

ढेंचूराम का प्रभावशाली वक्तव्य सुनकर विष्णु भगवान गम्भीर चिंतन में डूब गए। मानव प्रतिनिधि ने कुछ कहना चाहा तो उसे हाथ उठाकर रोकते हुए उन्होंने अपना फैसला सुना दिया—'ढेंचूराम जी की शिकायत वाजिब है। मैंने स्वयं ऐसी एक दो घटनायें प्रत्यक्षतः घटित होते देखी हैं। मानव जाति को इस अपमानजनक व्यवहार के लिए कठोर सजा मिलना चाहिए। किन्तु मैं समझता हूँ कि अन्य किसी प्रकार की सजा से भले ही मानव जाति को अपने अपराध की सजा मिल जाए किन्तु शायद गर्दभ जाति की संतुष्टि न हो पाएगी। अतएव मैं आदेश देता हूँ कि आज के बाद वर्ष में एक बार प्रत्येक उस मानव को जो मानव समाज में बुद्धिमान माना जाता हो, को 'गर्दभराज' की उपाधि से विभूषित किया जाए तथा यदि सम्भव हो तो उसे गर्दभ की सवारी उपलब्ध कराकर सम्मानित किया जाए। इस अवसर पर सभी मानवों को ढेंचूराग में

कोरम गाते हुए गदभ के चित्र अथवा प्रतिमा और अगर सम्भव हो सके तो साक्षात गदभ की पूजा करना एव गदभराज की जय-जयकार करना भी अनिवाय होगा।"

फैसला सुनते ही ढेंचूराम प्रसन्नतापूवक "ढेंचू-ढेंचू" कर उठे और मगन होकर दुलत्तियाँ झाडन लगे। परिणामस्वरूप अधिकाश सभासद घायल होकर इधर-उधर लुढक गए। और विष्णु भगवान लक्ष्मी जी का हाथ पकड़कर, उन्हे लगभग घसीटने हुये सभागृह से अंतर्ध्यान हो गए। कुछेक क्षणो बाद सभागृह म सन्नाटा छा गया। केवल ढेंचूराम के ढेंचूराग का आलाप ही गूजता रहा।

○ ○ ○

लगना लू का

यह गर्मी का मौसम भी अजीब सा है। जब सूर्यदेवता आसमान पर अपने पूरे जोशो-खरोश मे चमकते हैं तो ऐसा महसूस होने लगता है जैसे हमें किसी तन्दूर म डाल दिया गया हो। चोटी से निकला पसीना ठीक उसी तरह ऐडी की ओर बहने लगता है, जैसे किसी अंगार पर रखे टमाटर के दरके हुए छिलके के बीच उसका रस अंगारे की ओर बहता है। गला सूखकर कुछ इस तरह हो जाता है जैसे गले के भीतर, बीचोबीच बबूल का समूचा झाड उग आया हो। उस पर तुर्रा यह कि अगर आपने छाया मे पहुँचते ही ठंडे पानी के सहारे उस बबूल को गले से उतारने का प्रयास किया तो समझ लीजिए कि हो गई आपकी छुट्टी। पानी पीते ही पहले तो चोटी से बहता पसीना परनाले की शक्ल अख्तियार करेगा। फिर कुछ ही देर बाद आपका शरीर भट्टी की तरह तपता हुआ मालूम पड़ने लगेगा। खोपडी एकदम पककर सूखे हुए नारियल की तरह बजती प्रतीत होगी तो बदन ऐसा लगेगा जैसे कोई सारे बदन मे रस्सी लपटकर कभी इधर तो कभी उधर खीच रहा हो। मुह का स्वाद कुछ इस तरह का होगा जैसे कपड़े धोने का सोडा खा लिया हो और यह तो है ही कि आप चाहे दस-पन्द्रह मटके पानी क्यों न उडेल लें मगर मजाल है कि मुह का भीतरी भाग गीला महसूस हो सके।

कुछ दिन पहले हम भी इस जजाल मे फस गए। परिवार के कुछ बुजुर्गों ने फरमाया कि हमे लू लग गई है। हमारी समझ मे कतई नही आया कि यह लू क्या बला होती है और हमे किस तरह लगी। हम इस घनघोर गभीर विषय पर चिन्तन कर पाते इससे पहले ही गाँव का गाव इस तरह हमारी खाट के चारों ओर सिमट आया कि लाख आँखे फाडने के बावजूद हम आसमान देख पाने मे असमर्थ रहे।

अब साहब, हजार ओझा की हजार बातें —एक ने फरमाया कि सफेद कपड़ा गीला करके हमारी छाती में पैर के अँगूठे तक ठीक उसी तरह फिराया जाए जिस तरह कोई फर्श को पोछा लगाता है। सात बार यह क्रिया दोहराई जाए। उनकी यह बात सुनते ही एक और हकीमाना स्वर उभरा— 'अरे क्या धरा है इन टोना-टोटकों में। सही इलाज तो यह है कि मरीज को चने की सूखी भाजी, फूल की थाली में भिगोकर, उसमें तांबे का सिक्का घिसकर, पिलाया जाए।' इतना सुनते ही हमारी माता जी कहीं से चने की सूखी भाजी खोज लाई और उसे फूल की थाली में भिगोकर रख दिया। तत्पश्चात् तांबे के सिक्के की खोज में वर्षों से अनछुए पड़े ताक-अलमारी खंगालने लगीं। उनका सिक्का खोजना अभी चल ही रहा था, कि दूसरी जीभ चटखारा लेकर चटचटाई— 'अजी साहब छोड़िए यह घास-फूस और तांबे के सिक्के का चक्कर। फटाफट कच्चा आम आग पर भून लीजिए। उसके भुने हुए गूदे को पानी में घोल लीजिए। फिर नमक, जीरा, मिर्च आदि मिलाकर बढ़िया पना बनाकर एक-दो गिलास पिला दीजिए। फिर देखिए यूं चुटकियों में भागती नजर आएगी लू।''

उपस्थित जन-समुदाय को उनका सुझाव पसन्द आया क्योंकि इस एल्यू-मिनियम युग में तांबे का सिक्का खोज लेना उतना ही कठिन काम था जितना किसी काव्य-पाठ में परहेज करने वाला कवि खोज पाना। सच कहूं तो लू लग जाने के बावजूद कच्चे आम के पने की बात सुनकर हमारी जीभ भी मचलने लगी थी। इसलिए हम स्वयं भी इस उपचार का समर्थन करना चाह रहे थे। किन्तु हम चाहें-चाहें इससे पहले ही कोई एक गिलास लाकर हमारे सिरहाने आ खड़ा हुआ और बहुत ही मीठे स्वर में उस गिलास को अपने अधरों से लगा लेने का इसरार करने लगा। हमारी जीभ तो पहले ही लार टपकाने को आतुर थी सो हम उस इसरार करने वाले से गिलास छीनकर एक ही सांस में खाली कर गए। किन्तु हमारी जल्दबाजी का परिणाम यह हुआ कि हम गिलास वापस रखना भी दूभर हो गया क्योंकि तथाकथित आम के पने में, डालने वाले ने मिर्च डालने में काफी दरियादिली दिखलाई थी। हमें तो बस ऐसा ही लगा जैसे हमने अपने गले में अंगार उड़ेल लिए हों। अब कहाँ की लू और कहाँ का होना लू से। हम उठे और उठकर

फिर खाट पर गिरे, बस पूर, जोश के साथ यही क्रिया दोहराने लगे। वैसे हमारे जी में आ तो यह रहा था कि हम खाट से कूदकर अपने कपडे फाड लें और आगन में सरपट दौडते हुए उसे घुडदौड का मैदान बना दें। मगर उस क्रिया से हमे पागल समझ लिए जाने का खतरा था। सो बिस्तर में ही उठापटक करने में ही अपनी खैर समझी। कुछ देर बाद हम पसीने में डूब गए। फिर भयकर थकान के कारण निढाल होकर बिस्तर पर पड गए। इसके बाद नींद आ गई या हम बेहोश हो गए, यह तो खुदा ही जाने। किन्तु जब हमारी आँखें खुलीं तो सुबह हो चुकी थी। जीभ और गले में अब भी हल्की-हल्की जलन हो रही थी किन्तु यकीन कीजिए लू का असर लेशमात्र भी बाकी न था।

दफ्तर का समय होने पर जैसे ही हमने दफ्तर की दिशा में पग बढाए तो हमारी माता जी ने छोटे-बडे प्याजो की एक लम्बी सी माला हमारे गले में यह कहते हुए डाल दी कि "प्याज गले में पडी रहने से लू नही लगती"। अब हमारी यह हालत है कि हम जब दफ्तर के लिए घर से निकलते हैं तो हमारे गले में छोटे-बडे प्याजो की माला ठीक उसी तरह पडी रहती है, जैसे कि साधुओं-फकीरों के गले में रुद्राक्ष अथवा मनका की माला। जब भी कोई हमें और हमारे गले में पडी उस माला को घूरते हुए अपनी उत्सुक निगाह हमारे चेहरे पर गडा देता है तो हम केवल इतना कहते हुए आगे बढ जाते हैं—लू-लू का सवाल है भाई।

० ० ०

खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचे

बिल्ली है, बिल्ली के पंजों में पैने नाखून हैं और उसके सामने खम्भा है तो अगर वह अपने पैने नाखूनों से खंभा नोचती है तो आपका क्या जाता है? लेकिन आपकी बात भी ठीक है। बिल्ली खम्भा नोचती है तो नोचे मगर वह खिसियानी क्यों? अर्थात् आपके चिन्तन का मूल बिन्दु है बिल्ली के खिसियाने का कारण। ठीक है मैं बतलाता हूँ आपको। दरअसल हुआ ऐसा कि एक बड़ा अफसर था, शहर पर उसका रौब था। एक डेयरी फार्म का एक मालिक था। चूंकि डेयरी फार्म का मालिक शहर में रहता था इसलिए उस पर भी अफसर का रौब चलता था। एक दिन अफसर ने डेयरी वाले से मलाई की फरमाइश की। फरमाइश करना बड़े अफसर का मौलिक अधिकार होता है। उसने अपने मौलिक अधिकार का प्रयोग किया। ठीक किया। रौब गालिब करने वाले की फरमाईश पूरी करना रौब खानेवाले का परम दायित्व होता है। सो डेयरी वाले ने अफसर की फरमाईश पूरी की। यानि अफसर के घर ताजा किलो मलाई भेज दी। ठीक किया। अफसर प्रसन्न हुआ। ठीक हुआ। अफसर के घर वालों ने मलाई ठंडी करने के लिए फ्रिज में रख दी। फ्रिज में रखते समय थोड़ी सी मलाई बाहर गिर गई। बस इस टपकी हुई मलाई की गंध फिजा में फैलकर बिल्ली के नथुनों तक पहुँच गई। उसने सोचा चलो अपने भाग्य से कहीं छींका टूटा है, अब मौज उड़ाई जाये। गंध के रास्ते बिल्ली फ्रिज तक जा पहुँची। वहां पर टपकी मलाई के कतरे देखकर वह संतुष्ट हुई। हां, यहीं मलाई है। उसने फर्श पर गिरी मलाई चाट ली। जीभ को मलाई का स्वाद मिला। चाह और बढ़ गई। अब बिल्ली ने मलाई का पूरा स्टाक उदरस्थ करना चाहा। मगर मलाई तो फ्रिज में बन्द थी। बिल्ली फ्रिज के पल्ले पर अपने पंजों से जोर आजमाइश करने लगी। मगर फ्रिज तो फ्रिज था। उस पर बिल्ली के पंजों से एक-दो खरोचें तो

जरूर पड़ी मगर वह भुला नहीं। इसलिए मलाई बिल्ली की पहुँच से दूर रही। बिल्ली, बिल्ली थी, कोई गीदड़ नहीं जो अंगूर न पाकर उन्हें खट्टे घोषित कर सतोष कर लेती। मलाई ना पाकर बिल्ली बाकायदा उस नेता की तरह जिसके कुर्सी तक पहुँचते ही किसी ने कुर्सी खींच ली हो, खिसिया गई। खिसियाते ही उसे सामने एक खम्भा नजर आया जैसे कि मंत्री पद पाने में असफल नेता को मंत्री पद प्राप्त नेता नजर आने लगता है। उसे लगा खम्भा उसे चिढ़ा रहा है। बस झपट पड़ी वह खम्भे पर और नोचने लगी उसे अपने पंजों से ठीक उसी तरह जैसे कुर्सी से वंचित नेता कुर्सी पाए हुए नेता को आरोपों के नाखूनों से नोचने लगता है। कुर्सी पाए हुए नेता का कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि वह कुर्सी पाते ही अपने तन मन पर एक मजबूत खोल चढ़ा लेता है। उसी तरह बिल्ली के वार से खम्भे का कुछ नहीं बिगड़ता। फिर भी बिल्ली खम्भा नोचना बन्द नहीं करती। मलाई न पाने से उत्पन्न हुई उसकी खिसियाहट कभी कम नहीं हुई। वह तब से आज तक खम्भा नोचती चली आ रही है। यह खिसियानी बिल्ली आज नाना रूपों में खम्भा नोचती नजर आती है। संसद में जाइए, वहाँ आपको प्रतिपक्षी नेता के रूप में सत्ता पक्ष पर आरोपों के नाखूनों से वार करती नजर आएगी। किसी प्रतिष्ठान में जाइए—ट्रेड यूनियन के नेता के रूप में हड़ताल, काम रोकने की धमकी आदि रूपी नाखूनों से प्रबन्धकों अथवा मालिक रूपी खम्भों को नोचती नजर आएगी।

सामाजिक संस्था में मंस्था के प्रमुख के रूप में समाज को नोचती नजर आएगी। साहित्य की ओर आइये तो आपको एक नहीं सैकड़ों खिसियानी बिल्लियां गुटबाज साहित्यकारों के रूप में नजर आयेंगी। उनकी खिसियाहट का कोई ओर-छोर ही नजर नहीं आयेगा। इस जाति की बिल्ली को हर तरफ एक न एक खम्भा नजर आता है और वह अपनी खिसियाहट में कभी इस खम्भे पर तो कभी उस खम्भे पर झपटती है। खम्भों का कुछ नहीं बिगड़ता। बिल्ली के नाखून ही घिसते चले जाते हैं। उनका पैनापन खतम होने लगता है। पंजे लहूलुहान होने लगते हैं। खिसियाहट और भी बढ़ जाती है और वह और भी जोर से खम्भों को नोचने लगती है। जनतन्त्र के इस जमाने में वोटर रूपी करोड़ों बिल्लियाँ

चुनाव रूपी छींका टूटने पर खुश हो जाती हैं और फिर अपने वोट की ताकत पर चुनाव जीतने वाले प्रत्याशी की बरखी के कारण खिसियाकर पाँच साल तक आस-पास के खम्भों को नोचती हर समय देखी जा सकती हैं।

कभी ऐसा भी होता है कि खिसियानी बिल्ली को सुविधा रूपी मलाई मिल जाती है और वह खम्भे को नोचना भूलकर मलाई पर हाथ साफ करने में जुट जाती है, मलाई को चाटती जाती है। मुंह, पंजों पर और नाखूनों पर मलाई का लेप करती चली जाती है। वह इस क्रिया में इतनी तल्लीन हो जाती है कि उसे पता ही नहीं चल पाता कि कब गृह-स्वामिनी सोटा लिए उसके पीछे आ गई। पता तो तब चलता है जब सोटा उसकी पीठ पर पड़ता है और गृह-स्वामिनी झपटकर मलाई का कटोरा उठा लेती है। मलाई छिनने और पीठ पर सोटा पड़ने से बिल्ली फिर खिसिया उठती है। खिसियाकर फिर सामने खड़े खम्भे पर झपट पड़ती है और पूरे जोशोखरोश से खम्भे को नोचने लगती है।

अनन्त काल से बिल्ली पर खिसियाहट सवार है। वह खम्भा नोचे जा रही है। खम्भे का कुछ नहीं बिगड़ा। वह ज्यों का त्यों खड़ा है। उसका कुछ बिगड़ेगा भी नहीं। क्योंकि बिल्ली के पंजों में इतना दम ही नहीं है कि वह खम्भे का कुछ बिगाड़ सके। मगर बिल्ली खिसियानी है तो वह तो खम्भा नोचेगी ही, क्योंकि उसके पास खम्भा नोचने के अतिरिक्त और कोई विकल्प भी तो नहीं है।

०००

एक प्रदर्शनी जो हमारे नगर मे लगी

हमारा नगर एक जीता-जागता नगर है। इस जिन्दा नगर मे अक्सर ■
न एक आयोजन होता ही रहता है। इसी जागरूकता के फलस्वरूप हमारे न
मे सामान्य नागरिको को देश की उपलब्धियो से परिचित कराने के उद्देश्य
एक प्रदर्शनी का आयोजन हुआ।

प्रदर्शनी के लिये नगर के उत्तरी छोर पर लगभग चार एकड जमीन
सफाई की गई। इस सफाई अभियान मे दो फायदे हुए। एक तो प्रदर्शनी
लिय अच्छाखासा मैदान मिल गया। दूसरी ओर हमारा नगर इस मैदान
फैली झुग्गी-झोपडियो के कलक से मुक्त होकर पूर्णमासी के चन्द्रमा की त
चमक उठा। झुग्गी-झोपडियो मे बसे लोग कहा गए इस छोटी सी
महत्वहीन बात को तूल देन का यहाँ कोई औचित्य नही है।

शुभ मुहूर्त पर प्रदर्शनी का उद्घाटन देश के एक लोकप्रिय मन्त्री न किया
यह एक विवादास्पद मुद्दा है कि प्रदर्शनी का आयोजन हुआ था और उस
उद्घाटन होना अनिवार्य था, इसलिये मन्त्री महोदय नगर म पधारे थे। अथ
चूकि मन्त्री महोदय नगर म पधारे थे और व उद्घाटन कर सकें इसलिय प्र
शनी का आयोजन हुआ था। इससे हमे कोई मतलब भी नही है। हमार लि
तो यही पर्याप्त है कि प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। प्रदर्शनी म शासन क स
विभागो न अपन-अपन स्टाल लगाए। स्टालो मे विभागो द्वारा अब तक सम्प
कार्यों का ब्यौरा और चल रहे कार्यों की रूपरेखा प्रदर्शित की गई। अ
नागरिको की तरह हम भी प्रदर्शनी देखन गय।

प्रदर्शनी मे पहला और सबसे बडा स्टाल था—कृषि विभाग का। य
स्टाल कई खण्डो मे बटा हुआ था। अलग-अलग खण्डो म अलग-अल
कृषि कर्मो से सम्बन्धित क्रियाकलापो का प्रदर्शन किया गया था। हम सब

ज्यादा आकर्षित किया उस खण्ड ने जिसमें कुछ छोटी-छोटी क्यारियाँ बनी थी। उन क्यारियों में गेहूँ के पौधे लहलहा रहे थे। वहाँ पर उपस्थित एक अधिकारी प्रदर्शनी-दर्शनार्थियों को बतला रहे थे—"देखिये, इस क्यारी के पौधों को। इन्हें देशी पद्धति से उगाया गया है। इन्हें न खाद दिया गया है और न ही सिंचाई की सुविधा इन्हें प्राप्त है। देखिये इनकी बाढ़ कितनी कम है और अब इधर देखिए—इस क्यारी के पौधों को। रासायनिक खादों की भरपूर खुराक दी गई है। समय पर सिंचाई की गई है और आवश्यकतानुसार रोग और कीटनाशक औषधियाँ भी छिड़की गई हैं इसीलिए इनकी इतनी अच्छी बाढ़ हुई है। इनकी बालियाँ इतनी बड़ी और ठोस है, दाने भी ठोस और चमकदार हैं कि किसानों को चाहिए कि वे इसी प्रणाली को अपनाकर खेती करें।" उनका प्रवचन समाप्त होने न होने हमने अपनी नादान नजरें उनके चेहरे पर गड़ाकर अपनी समस्या प्रस्तुत कर दी—"साहब, हमने भी एक बार अपने खेत में इसी उन्नत पद्धति के अनुसार गेहूँ उगाने का उपक्रम किया था। तब हम आवश्यकतानुसार खाद नहीं मिला। नहर से समय पर पानी नहीं मिला। विद्युत पम्प से सिंचाई करने का प्रयत्न किया तो विद्युत कटौती के कारण समय पर पम्प नहीं चला पाए और अन्त हम बोए गए बीज से चन्द किलोग्राम अधिक उपज पर ही सन्तोष करना पड़ा।' हम आगे और भी कुछ कहना चाहते थे कि अधिकारी महोदय ने हमें वक्र दृष्टि से घूरा। फिर बोले—"भाई साहब, खाद, बिजली अथवा पानी की पूर्ति हमारा काम नहीं है। आप सम्बन्धित विभागों से इसकी शिकायत कीजिए।' उनका उत्तर सुनकर हम अपना सा मुँह लिए अगले स्टाल की ओर बढ़ गए।

दूसरा स्टाल उद्योग विभाग का था, जहाँ विभिन्न मशीनों और कारखानों के माडल प्रदर्शित किए गए थे तथा एक अधिकारी उन माडलों के सम्बन्ध में जानकारी देते हुए उनकी स्थापना की लागत, आवश्यक सामग्री तथा कार्य-प्रणाली का बखान कर रहा था। उसकी वर्णन शैली और व्यक्तित्व की शालीनता देखकर हम पूछ बैठे—श्रीमान्, अगर हम एक कारखाना स्थापित करते हैं तो उसके लिये आवश्यक मशीनरी, पर्याप्त कच्चा माल नहीं मिल पाता।

अगर यह सब मिल भी जाए तो उत्पाद का विक्रय अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ?"

अधिकारी महोदय की मुद्रा एकाएक ही बदल गई। उनके नथुने फड़कने लगे—"यही तो मुसीबत है इंडियन्स के साथ। काम शुरू करने की सोचने से पहले ही कठिनाइयों की चर्चा करने लगेंगे। फिर प्रत्येक समस्या का समाधान हमारे विभाग के पास तो नहीं है न ? आपूर्ति विभाग और विपणन विभाग किसलिए हैं आखिर। जाइये उनसे पूछिये।"

उनके जवाब से लाजवाब होकर हम अगले स्टाल की ओर बढ़ गए।

संयोग से अगला स्टाल आपूर्ति विभाग का ही था। वहां एक प्रतिनिधि विभाग द्वारा की गई वितरण की व्यवस्था, उपलब्ध स्टाक आदि के सम्बन्ध में तालिकाओं की ओर इंगित कर लोगों को समझा रहा था। हमने उनसे पूछा— भाई साब, जब आपके पास आवश्यक वस्तुओं का पर्याप्त स्टाक है, वितरण की इतनी अच्छी व्यवस्था कर रखी है आपने, फिर हमें समय पर और उचित दाम पर ये वस्तुएं क्यों नहीं मिल पातीं ? अधिकांश वस्तुएँ हमें ब्लैक-मार्केट में क्यों खरीदनी पड़ती हैं ?"

वे खिसिया उठे। फिर बरस पड़े—"हमने इतनी अच्छी व्यवस्था कर रखी है तो क्या अपने लिए ? आपके ही लिए तो। अब यदि आप लाभ नहीं उठा पाते तो हम क्या करें। क्या हम प्रत्येक वस्तु आपके घर पहुँचाने जायें ?" बात उनकी भी ठीक थी। बेचारों ने इतना परिश्रम करके यह व्यवस्था बनाई है। अगर हम ही उनसे फायदा नहीं उठा पाते तो वे भी क्या करें।

हम और आगे बढ़े तो हमने स्वयं को सांख्यिकी विभाग के स्टाल के सामने पाया। यहां बड़ी-बड़ी तालिकाएँ लटकी हुई थीं, जिन पर प्रगति के आंकड़े अंकित थे। आंकड़े देख-देखकर हमारी आंखें फटी पड़ीं। हमारे देश ने इतनी प्रगति कर ली और हमें पता भी नहीं चला। हम व्यर्थ की आशंकायें-कुशंकायें लिये घूम रहे हैं, देश के कर्णधारों को दोषी ठहरा रहे हैं। लानत है हम पर। हम पछता रहे थे। काश ! हम पहले ही इस स्टाल पर आ गए होते। लेकिन यहां भी वही मुश्किल पेश आई क्योंकि हमारी जिज्ञासा हमारी इच्छा के विपरीत

अनायास ही उछल कर बाहर आ गई। हम पूछ रहे थे, "भैया जी, ये जो आंकड़े आपने प्रदर्शित किए हैं, ये आपके पास कहाँ से आए? क्या ये आंकड़े वास्तविक हैं?"

हमारी बात पूरी होने से पहले ही वहाँ तैनात अधिकारी आगबबूला हो उठा—"हाँ जी, ये आंकड़े हमने घर में बैठे-बैठे तैयार कर लिए हैं। सारे आंकड़े गलत हैं। जाइये जिससे जी चाहे शिकायत कीजिए और बंधवा दीजिए हमें तोप के मुंह पर। हुंह—कैसे-कैसे अजीब जन्तु हैं हमारे हिन्दुस्तान में।" और उन्होंने मुंह बिचका कर फर्श पर पिच्च से थूक दिया। यकबालिव सी हमारी हथेली, हमारे चेहरे पर घूम गई क्योंकि हमें ऐसा महसूस हुआ था जैसे उस अधिकारी ने फर्श पर न थूक कर हमारे चेहरे पर थूका हो।

हमारा मूड उखड़ चुका था और हम वापस घर जाने की सोच कर मुख्य द्वार की ओर बढ़े ही थे कि अनायास ही चारों दिशाओं से चार वर्दीधारी हमारी ओर झपटे और चारों ने एक साथ हम पर धावा बोल दिया। हम अरे-अरे कहते हुए जब तक बचाव का प्रयत्न करते, उन्होंने हमें अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया।

जब हमारे किसी भी तरह छूट कर भाग जाने की कोई सम्भावना शेष न रही तब उनमें से एक बोला— "चलो, ले चलो साले को कोतवाली। इसे देश की प्रगति में शंका है। साला विदेशी जासूस लगता है। जब पड़ेगी तो भूल जाएगा सारी जासूसी-वासूसी।"

हमने घबराकर स्पष्टीकरण देना चाहा तो हमारे गाल पर एक सन्नाटेदार झापड़ पड़ा और हमें दिन में ही तारे नजर आ गए।

एक क्षण हमें पुनः सामान्य होने में लगा। सामान्य होने पर हमने पाया कि वे चारों अब भी हमें जकड़े हुए हैं और घसीटते हुए हमें किसी अज्ञात स्थान की ओर ले जा रहे हैं।

० ० ०

बाजियो मे बाजी आँकडेबाजी

बाजी लगाना हमारे देश की पुरानी परम्परा है। नवाबो की महरबानी स बटेर बाजी (मुगलकालीन इश्कबाजी, जा कालान्तर म प्यार-मोहब्बत का पर्याय बन गई) और पतगबाजी खूब चली। इन बाजियो स सामन्तवाद की बू आती है और हम सामन्तवाद से कोसो दूर रहते है सो हमन इन बाजियो की ओर कभी ध्यान नही दिया। वैसे भी अग्रेजो की पैतरबाजी के सामने य बाजिया पानी भरने लगी और हमे इन पर ध्यान देने की कोइ आवश्यकता ही न रही।

कुछ सिर-फिर लोग आज भी इन बाजियो म बाज नही आते। व बाजी भले ही न लगा पाएँ मगर उस पर कलम चलाकर कागज, स्याही तथा अपन साथ-साथ सैकडा लागो का वक्त जरूर बरबाद कर डालते ह।

अग्रेजो की महरबानी से धधेबाजी, फिर कालान्तर मे फन्देबाजी और धोखेबाजी भी खूब पनपी। समय कुछ और आग बढा। काग्रेस न जन्म लिया। भाषणबाजी के साथ-साथ नारेबाजी, फिर पत्थरबाजी और इनके जवाब म लट्ठबाजी भी खूब फली-फूली।

मस्काबाजी एक पुरानी चीज है और सदियो म आबाद है। देवताओ और ऋषिमुनियो स लेकर साधारण मनुष्यो द्वारा इस "याद" किया गया, मगर इसे सर्वाधिक महत्त्व हमारे इसी नए जमाने मे मिला। मस्काबाजी के नए नए तरीको की खोज भी इसी जमाने मे हुई। किन्तु मस्काबाजी कुछ इस तजी स फूली-फली कि शीघ्र ही उस पर पतझड न हमला बोल दिया। इसस उसका अस्तित्व भले ही खटाई म न पडा हो, मगर उसका भविष्य कतई उज्ज्वल नजर नही आता।

अखाडेबाजी, नशेबाजी और गप्पबाजी जसी बाजिया कुछ इन-गिन पहल-

खाना के बीच जमती है, इसलिय उनका कोई खास महत्व नहीं है। दीपावली और शादियो के मौसम मे आतिशबाजी तथा बाजारो और बडे अफसरों-नताओ के घरो म सौदेबाजी भी खूब चलती है किन्तु यह तो मात्र कुछ घटो का खेल होता है।

एक बाजी शतरज की भी जमती है, जिसम मजूयल खिलाडी (भगवान जाने लाग उन्ह खिलाडी क्या कहते हैं) पानी की सतह पर मछली के उभरन का टकटकी बाध कर इतजार करन वाल बगुले की तरह मोहरो पर नजरे जमाए घण्टो पर घण्टे गुजार देते हैं। वैसे है बडे काम की यह बाजी। अगर किसी का खाना-पानी और नीद हराम करना हो तो उसे शतरज की बाजी जमान की लत लगा दीजिये। वह घरबार तो घरबार राजपाट भी भूल जाएगा।

मुक्केबाजी का भी यद्यपि बडा महत्व है किन्तु उसे हमारे देश का वातावरण रास नही आया। हा अटकलबाजी और बहानबाजी हमारे देश म खूब चलती ह।

कभी-कभी कुछ लोग बैठे-बिठाय कलाबाजिया खान लगत ह। कुछ तमाशाबीन किस्म क लोग इन्ह कलाबाजियां खात देखकर च द लमहो क लिये खुश हो जाते हैं किन्तु इस बाजी का हश्र लगभग वैसा ही होता ह जैसा कि कला फ़िल्मो का (कला फिल्म वह फिल्म कहलाती ह जिसे बनाए तीन हजार लाग, दख तीन सौ लोग उतर जाए तीन दिन क बाद और उस पर चर्चा चले तीन दिन तक) शायद उसका यही कारण ह कि यहा भी कला आगे-आगे चलती है और वहा भी।

कुल मिलाकर सभी बाजिया एक न एक वक्त फीकी पड जाती ह। मगर सारी बाजिया म अलग एक बाजी एसी भी है जिसका रंग कभी फीका नहीं पडता। उस बाजी का भविष्य भी खूब दमदमाता नजर आता है। यह सदाबहार बाजी है—आकडेबाजी। जिस तरह बटेरबाजी म बटेरें और पतगबाजी मे पतग लडती हैं और मेरा दशक बटेरो के छितराते पख तथा पतगो क कटते मझे देखकर प्रसन्न होते हैं अथवा मस्कबाजी म मस्काबाज मस्के का लेप करता है, मस्काखोर मस्के के दम पर अपना तन मन चमका लेता है और अपनी

मस्पा नेपित मुस्कान मे मम्बाबाज को कृताथ कर देता है। फिर इस क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम लाखो-करोडो अप्रत्यक्षदर्शी भोगते हैं। उसी तरह आंकडे-बाजी म आंकडे इतराते है, इठलाते है, बहकते, लचकते और मटकते है, फिर झगडते है और जमकर लडते हैं। आकडेबाज, मूछो पर ताव देते हुए (सफाचट होने पर भी) अपनी कुर्सी से चिपकते चले जाते है। आकडेबाजी की इस प्रक्रिया स अनभिज्ञ लोग उनका कमाल देखकर दग रह जाते है। आंकडेबाजी मे आंकडो की बाजी किस तरह जमती है आइए एक नमूना देखें।

एक दफ्तर था। दफ्तर का काम समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए प्रयास करना था। दफ्तर का प्रभारी एक नया अफसर था। उसके नीचे बीससाल पुराना एक बडा बाबू और दसेक छोटे बाबू काम करते थे। एक दिन जसे ही अफसर ने सुबह की डाक मे आया एक लिफाफा खोला, उसकी खोपडी मे सैकडो कबूतर एक साथ फडफडाने लगे। फिर खोपडी की पहाडी स सैकडो झरने फूट पडे और ठुड्डी की घाटी को पार कर झकझक करता गरबा हर करने लगे। बडे बाबू सामने ही विराजमान थे। अपने साहब की यह हालत देखकर, उन्होने साक्षात् सवमन बन कर, साहब के दुश्मनो की तबियत अनायास ही नासाज हो उठने का कारण पूछा तो अफसर के मुह से पहले तो एक दीर्घ नि श्वास छूटा। फिर मरी सी आवाज निकली "कुछ न पूछिए बडे बाबू—ये बडे लोग, हम लोगो को तो जैसे मशीन समझते है। अब देखिए न, यह आदेश आया है। फरमाते हैं तीन दिन मे सम्पूर्ण जिले के भिखारियो की सख्या ज्ञात कर उन्हे जीविका उपलब्ध कराने हेतु योजनाएँ और बजट तैयार कर प्रस्तुत किए जाएँ। क्या यह काम बच्चो का खेल है जो तीन दिन मे पूरा हो जाएगा।"

बडे बाबू एक समझदार मुस्कान मुस्कुराए। फिर बोले—"साब गुस्ताखी मुआफ हो, आप तो व्यथ ही घबरा गए। बन्दे को हुक्म कीजिए और देखिए। यू चुटकियो म होता है—यह काम।" अफसर पहले तो भौचक हो बडे बाबू का मुह ताकने लगा, 'फिर करता क्या न करता' की स्थिति मे उसने वह आदेश वाला कागज बडे बाबू की ओर बढा दिया।

उसी दिन, शाम को, बडे बाबू ने न केवल भिखारियो की वर्गवार सख्या और उनके लिए जीविका की योजनाएँ तैयार कर ली, बल्कि व्यय का बजट भी

तैयार कर अफसर के सामने धर दिया। अफसर पहले तो सकपकाया फिर उसने सभी प्रपत्रों पर अपने हस्ताक्षर बना कर उन्हें ऊपर के कार्यालय को भेज दिया। आप विश्वास भले ही न करें मगर यह शुद्ध हरिश्चन्द्री सत्य है कि न केवल बड़े बाबू द्वारा तैयार किए गए सारे आंकड़े स्वीकार कर लिए गए बल्कि उसके द्वारा प्रस्तुत बजट भी आंशिक संशोधनों के साथ मात्र पन्द्रह दिनों में स्वीकृत होकर आ गया।

आपकी तसल्ली के लिए एक और नमूना पेश है। जंगल महकमे में फारेस्ट गार्ड नामक एक निरीह प्राणी होता है, जिसके सिर पर अफसरों की पूरी फौज होती है। ऐसे ही कुछ फारेस्ट गार्डों को ऊपर से आदेश मिला कि वे अपने-अपने क्षेत्र के जंगल के महुए के पेड़ गिन कर उनकी सही-सही संख्या तीन दिन में बतलाएं। अब हुई आदेश के मारों की दौड़ शुरू, मगर किसी के लिए भी पूरे पेड़ गिन पाना संभव नहीं था।

चौथे दिन अफसर का दरबार लगा। सभी फारेस्ट गार्ड तलब किये गए। एक-एक कर सभी ने काम पूरा न कर पाने की मजबूरी जतलाई और उस माह के वेतन से वंचित हुए। किन्तु अंतिम फारेस्ट गार्ड, जो कि आंकड़ेबाजी में माहिर था, ने अपने क्षेत्र के जंगल में महुए के पेड़ों की संख्या बतलाई—'पांच हजार पांच सौ सड़सठ" और वेतन के साथ-साथ साहब से लिखित प्रशस्ति पत्र भी प्राप्त किया। आप विश्वास करें, यह आंकड़ाबहादुर पेड़ गिनने के लिये एक घंटे के लिये भी जंगल में न घुसा था।

यह आंकड़ेबाजी का ही कमाल है कि बाजार में प्रत्येक वस्तु के दाम आसमान की ऊँचाइयाँ छूने लगते हैं किन्तु सरकार के कागजातों में मूल्यवृद्धि का प्रतिशत नाममात्र को ही बढ़ता है। पूरी की पूरी ट्रेन उलटकर नदी में गिर जाती है मगर मात्र 150-200 यात्री ही मर पाते हैं, अकालग्रस्त क्षेत्र में भरपूर पैदावार हो जाती है बिना कारखाना खुले ही रिकार्ड उत्पादन हो जाता है, पूरे गांव पर बंटी फिर जाने के बावजूद संक्रामक रोग अथवा भूख से एक भी आदमी नहीं मर पाता।

अर्थात् आलसेबाजी ऐसी दवा है जो सभी मर्जों पर शर्तिया असर करती है। ज़र्रे को पहाड़ और पहाड़ को ज़र्रे में बदल सकती है। इस कला में माहिर व्यक्ति अर्थात् आलसबाज, बिस्तर पर पड़े रहकर भी प्रगति के सोपानों के ढेर लगा सकता है। आप भी अगर मस्ती छानना चाहते हैं तो आ जाइए ताल ठोक कर मैदान में और भिड़ जाइए आलसेबाजी में। न न, भाई, मैं और शागिर्द नहीं पाल सकता। मेरे पास भूल कर भी मत फटकना, क्योंकि मेरे शागिर्दों की संख्या पहले ही हजारों में है।

० ० ०

कथा एक मौलिक चिन्तन की

जी हाँ, हम जन्मजात चिन्तक हैं। हमारे बुजुर्ग बतलाया करते हैं कि जब हम पैदा हुए थे तब न तो हम रोए-चिल्लाए थे और न ही मुस्कुराए थे। हमारा चेहरा बाकायदा तोमड़े सा लटका हुआ था जैसा कि चिन्तकों का हुआ करता है। बस तभी से हम शाश्वत् सत्य की खोज में भिड़ गए थे।

उस समय हम इस धरा पर अवतरित हुए कुछेक वर्ष ही हुए थे जब हमारे गांव में पंडित जी ने हमें समझाया था कि बेटा! ईश्वर ही शाश्वत् सत्य है और सब मिथ्या है। कुछेक जिज्ञासाओं के समाधान के पश्चात् हमने उनके उपदेश को सत्य मान लिया था। किन्तु भला हो उन वैज्ञानिकों का, जिन्होंने हमारी इन मान्यताओं के चिथड़े उड़ा दिए और हमें पुनः चिन्तन पर मजबूर कर दिया। हम लगातार चिंतित रहने लगे। हमारे आसपास मंडराने वाले रिश्तेदार हमारे चिन्तन से घबरा उठे। सबकी एक ही राय थी लड़के की शादी कर दो। बहू आएगी तो इसके चिन्तन को नई दिशा मिलेगी। इसका चिन्तन घरवाली के साथ-साथ परिवार की ओर दिशा-परिवर्तन कर लेगा। उनकी चर्चाओं का हम पर कोई असर नहीं हुआ। हमारी ओर से कोई प्रतिक्रिया प्राप्त न होने पर परिवारजनों का षड्यंत्र फलीभूत हुआ। और हमें जबरन दूल्हा बना दिया गया। चूंकि हम चिन्तन में लीन थे हमें इस षड्यंत्र का जरा सा भी अहसास नहीं हुआ। परिणामस्वरूप हम दूल्हा बने और इसी बीच हमारे घर में एक नए प्राणी का प्रादुर्भाव हुआ—एक गोल मटोल सी खूबसूरत लड़की जिसे हमारी दुल्हन कहलाने का प्रमाण पत्र प्राप्त था।

दुल्हन को हमारे घर आए मात्र एक सप्ताह ही हुआ था कि एक और नया प्राणी हमारे घर आ गया। ऐसा प्राणी यकीन कीजिएगा हमने पहले नहीं देखा था। इस प्राणी का रंग कोयल को भी मात देने वाला था किन्तु शरीर की चमड़ी इतनी चिकनी थी कि नगरपालिका द्वारा बच्चों के लिए बनाए गए पार्क में

लगी फिमननी याद आती थी। यह चमडी इतनी चमकदार थी जैसे अभी-अभी किसी बूट पर क्रीम पालिश की गई हो। इससे भी बढकर खूबी तो यह थी कि उसके चार पैर थे और दो बडे-बडे अजीब ढग से मुडे घुमावदार सीग भी। स्वास्थ्य म एकदम हमारी तथाकथित दुल्हन की तरह ही गोलमटोल। फिर भी शरीर सरचना मे उससे एकदम भिन्न। इस प्राणी क आगमन स हमारा स्थिर चिन्तन डगमगा गया। हमारे नत्र कभी हमारी तथाकथित दुल्हन को निहारते तो कभी इस अजीब प्राणी को। हमारी जिज्ञासा का कारण मात्र इतना था कि इस प्राणी का आगमन दुल्हन के प्रादुर्भाव के साथ ही हुआ था। अत हमारे विचार म इन दोनो के बीच कोई न कोई सबध अवश्य होना चाहिए। यह हमारा मौलिक विचार था। किन्तु दोनो के शरीरो म विराट अन्तर होन क कारण हम दोनो के मध्य क्या रिश्ता ह, इसका हल निकालने मे पूर्णत असफल रह।

हमने पूर्व मे ही निवदन किया है कि हम जन्मजात चिन्तक हैं। हम पुन चिंतन मे डूब गए। हमारे चिन्तन का केन्द्र अब यह प्राणी था। हमन सोचा कि यदि इस प्राणी और हमारी दुल्हन मे कोई सम्बन्ध नही है तो फिर इन दोनो के लगभग एक साथ आगमन का रहस्य क्या है? आखिर यह प्राणी दुल्हन के आने से कुछ दिनो बाद ही क्यो आया? इसस पहले क्यो नही आया? चिन्तन पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मगर चूकि इस विषय पर हमार पास कोई सदर्भ ग्रथ, उपलब्ध नही था, हम कोई धारणा स्थिर नही कर पाए। जब हम चिन्तन के माध्यम से इस समस्या का समाधान नही खोज पाए तो हमने इस प्राणी का अध्ययन करने का निश्चय किया। शारीरिक सरचना तो हम इस प्राणी के प्रादुर्भाव के समय ही ज्ञात कर चुके थ। अब हमन उसकी आदतो आदि का अध्ययन प्रारम्भ किया। हमने पाया कि यह चौपाया रोटी का दास नही ह। इसे खली भूसा घास-दाना आदि जो भी द दिया जाय, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता ह। सीग होते हुए भी यह उनका सदुपयोग सामान्यत नही करता। कभी-कभी अजीब ढङ्ग म डकराता है। इस तरह डकराते अभी तक हमने कभी-कभार कुछ कवि नामधारी मानवो को ही देखा था। इसे रस्सी की मदद से खूंटे से बाँधा जाए अथवा ना बाधा जाए यह अपने स्थान पर ही डटा रहता

है। अर्थात् अतिक्रमण का आदी नहीं है। इस प्राणी के साथ उसका एक मिनी संस्करण भी था। काया की स्थूलता के अतिरिक्त यदि दोनों संस्करणों में कोई अन्तर था तो यह कि मिनी संस्करण के सींग नहीं उगे थे। सर्वाधिक आश्चर्य तो हमें उस समय हुआ जब शाम को एक व्यक्ति बाल्टी लेकर उसके पिछले पैरों के पास बैठ गया। कुछ ही समय बाद वह बाल्टी सफेद दूध से भरी थी। हमारा दिमाग चक्कर खा गया। आखिर इस घनघोर काली काया में इतना सारा सफेद दूध कैसे विद्यमान रहता होगा। हमारा दिमाग कुलाटियाँ खाने लगा। इस प्रश्न ने हमारे दिमाग में खलबली मचा दी। जब हम इस ज्वार को सम्हाल नहीं पाए, तो हमने अपनी समस्या परिवार के बुजुर्ग के समक्ष प्रस्तुत कर दी ? वे मुस्कराए ? फिर खिलखिला कर हँस पड़े—हँसते ही चले गये। काफी समय बाद जब उनकी हँसी थमी तो उन्होंने भेद खोला कि इस प्राणी का नाम भैंस है और यह हमें दहेज में मिली है।

भैंस शब्द सुनना था कि हमारे ज्ञान-चक्षु खुल गए। हमारे कानों में समय-समय पर सुनी ढेरों लोकोक्तियाँ गूंजने लगीं। इन लोकोक्तियों के उद्धरण देना शायद उचित नहीं होगा क्योंकि सुधि पाठक इनसे बखूबी परिचित होंगे, ऐसी हमारी धारणा है।

हम दौड़े-दौड़े उस प्राणी अर्थात् भैंस के पास पहुँचे। उसकी पीठ पर हाथ फेरा, उसे चूमा किन्तु उसने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। हम चुपचाप आंगन में वापस लौट आए। हम फिलहाल चिन्तन से मुक्त थे अतः हमने आंगन में पसरे हुये परिवारजनों की बातें सुन लीं। उनकी बातों का विषय यही भैंस थी।

इस घटना को घटित हुए कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक भयंकर दुर्घटना घट गई। न जाने किस बात पर नाराज होकर यह सर्वप्रिय भैंस उछलने-कूदने लगी। खूंटा उखाड़कर आंगन में आ गई और सरपट इस कोने से उस कोने तक किसी अभ्यस्त धावक की तरह दौड़ लगाने लगी। सभी परिवार जन अस्त-व्यस्त हो उठे। कुछ मिनटों तक सरपट दौड़ने के बाद वह अचानक ही धराशायी होकर अंटाचित्त हो गई। हमने नजदीक जाकर उसके शरीर पर

हाथ फेरा। कोई प्रतिक्रिया नहीं। तभी परिवार के बुजुर्ग महाशय करीब आए। उन्होंने भैंस के शरीर का गौर से निरीक्षण किया। निरीक्षण के पश्चात् उन्होंने गुरु गम्भीर वाणी में घोषणा कर दी कि भैंस परमधाम प्रस्थान कर चुकी है। इस घोषणा को सुनते ही हमारी दुल्हन पछाड़ खाकर जमीन पर लोट गई। घर में कोहराम मच गया। हम भौंचक, परिवारजनों को दुख के सागर में गोते लगाते देखते रहे। कुछ देर में कोहराम शांत हो गया किन्तु सबकी जिव्हाओं पर बस एक ही नाम था। अर्थात् भैंस ही उनकी चर्चा का विषय थी। और बस, इसी क्षण हमारे पूर्व चिन्तन का समाधान मिल गया। अर्थात् यदि कोई शाश्वत् सत्य है तो यह है—कि एक अदद भैंस, सिर्फ भैंस और कुछ नहीं।

० ० ०

अथ अफसर चरित्रम् भाष्यते

अफसर, अफसर और अफसर ! आप किसी भी दफ्तर म चले जाइए आपका सावका इस हस्ती से अवश्य पड़ेगा। अर्थात् अफसर, ईश्वर की तरह सर्वव्यापी होता है। दूसर शब्दो मे कहा जाए तो अफसर ईश्वर का मानवीय सस्करण हुआ। चूकि वह ईश्वर का ही दूसरा रूप है उसे समझ पाना, ईश्वर को समझ पाने की तरह ही कठिन है। उसे समझने के लिए मानव को कई-कई जन्म लेने पड सकते हैं। हो सकता है तब भी उसे न समझा जा सके। जब कोई मानव अफसर को समझ लेता है तो वह अफसरमय हो जाता है। अथात् स्वय अफसर जैसा या कभी कभी तो वह स्वयं ही अफसर बन जाता है। और जब वह अफसर बन जाता है तो उस भी वे गुण और शक्तियाँ प्राप्त हो जाती है जो एक अफसर के पास होनी चाहिए।

किन्तु इस असार ससार मे हम जसे कुछ भाग्यशाली लोग भी पाए जाते हैं जिन्हे अफसर को जान लेने के लिए एक जन्म भी गवाना नहीं पडा। अब आपको चाहिए कि उस अफसर महान को जानने के लिए हमारी शिष्यता ग्रहण करे। हमारा शिष्य बनने के लिए आपको हमारे पास आने की जरूरत नहीं है। हम चूंकि अफसरज हो चुके हैं, हमारा दिल भी बडा हो गया है और हम बिना आवेदन प्राप्त हुए भी लोगो को शिष्य बनाने म नही हिचकते। इसी तरह आपको भी अपना शिष्य मान लेते हैं और अपने वचनामृत से आपको कृतार्थ करते हैं।

तो लीजिए प्रारभ होती है—अफसर-चरित्र-कथा। कान मे तेल डालकर सुनिए और अपना जनम सफल बनाइए।

अफसर नाम की यह हस्ती, दफ्तर की सबसे बडी मेज के पीछे पडी दफ्तर की सबसे अधिक आरामदेह कुरसी पर विराजती है। हर दफ्तर इसके लिए

विशेष व्यवस्था करता है तानि वह अलग-थलग नजर आए उसका सामान्
करण न हो।

सर्वव्यापी होने के साथ-साथ अफसर सर्वज्ञ भी होता है। दफ्तर तो दफ्
दुनिया भर की हर घट चुकी, घट रही और भविष्य में घटने वाली प्रत्येक घट
का ज्ञान उसे होता है। भूलकर भी उसकी कही हुई बात का विरोध
कीजिए, बहस भी मत कीजिए। वरना अफसर नाराज हो जाएगा। अफसर
नाराज होना, ईश्वर का नाराज होना है और जब ईश्वर ही नाराज हो जाए तो

उसका थोबड़ा कैसा भी अनगढ़ क्यों न हो, वह अपनी ओर से हमेशा बन
ठना नजर आएगा। चाहे इस कारण वह कार्टून ही क्यों न नजर आने लगे। उ
हर समय यह एहसास बना रहता है कि वह अफसर है और अफसरी तभी
सकती है जब वह, सूटेड-बूटेड (और टाइड) भी रहे। इस तरह सजे-धजे रहने
उसे कई फायदे होते हैं। लोगों को पता चल जाता है कि वह हाईली पढ़
सुरुचि सम्पन्न है, सर्वाधिकारी है सर्वज्ञ है यानि कि अफसर है। सूटेड बूटे
आदमी की कही बात का असर जल्दी होता है डांट-डपट करने में सुविधा हो
है और इससे भी बढ़कर उसके मातहत उससे डरते हैं, उसकी जी-हुजूरी क
है। चूंकि हर अफसर ईश्वर का डुप्लीकेट होता है, वह राजा हरिश्चन्द्र से
एक दर्जा आगे होता है। वह कभी झूठ नहीं बोलता—विशेष रूप से अपने मा
हतों की शिकायत ऊपर तक पहुँचाने के मामले में तो कतई नहीं।

वह कभी कोई गलती नहीं करता। जो भी गलतियां होती हैं, वे उस
मातहतों की होती हैं। दफ्तर के जो भी अच्छे काम होते हैं वे अफसर के कि
होते हैं।

ईश्वर की तरह ही हर अफसर मस्कापसंद होता है। आपकी समझ इत
कमजोर तो होगी नहीं कि मस्का-पसंदी का अर्थ न जानें। अतः हम इस
व्याख्या न करके कथा को आगे बढ़ाते हैं। हां तो अफसर मस्का-पसंद होता है
उसका काहिल से काहिल, कामचोर और लापरवाह मातहत भी यदि मस्
मारने में एक्सपर्ट है तो वह अफसर का प्रिय होता है। मुहक्ट, अफसर
गलतियां बताने वाला, उससे बहस करने वाला मातहत चाहे कितना भी मेहनत
समय का पाबंद और कार्यकुशल क्यों न हो, अफसर की निगाहों में खटकता है

कोई भी अफसर किसी भी काम को तुरन्त निपटाने का कायल नहीं होता। यह उसकी प्रतिष्ठा का सूचक है। जिस अफसर के पास से काम होने में जितनी देर लगे वह उतना ही बड़ा अफसर होता है। अतः कोई भी अफसर चाहे उसे कागज पर मात्र चिड़िया ही क्यों न बिठानी हो, तब तक नहीं बिठाएगा जब तक कि सम्बन्धित व्यक्ति अफसर की चिरौरी न करे। इससे अफसर की प्रतिष्ठा बढ़ती है। अफसर कभी भी किसी का मशविरा सुनना पसंद नहीं करता। अगर किसी भी कारणवश सुन भी ले तो उस पर अमल कदापि नहीं करता। उसका काम तो आदेश देना है सो आदेश देता है और उसका पालन चाहता है।

कोई भी अफसर "न" सुनना पसंद नहीं करता। अतः उसके मातहतों को चाहिए कि उनका अफसर जो भी कहे उस पर बिना कोई सोच-विचार किए हाँ कर दें।

स्मार्ट दिखना अफसर का जन्म-सिद्ध अधिकार है। अतः वह किसी की "स्मार्टनेस" सहन नहीं कर सकता। अपने से अधिक स्मार्ट दिखाई देने वाला व्यक्ति अफसर को रास नहीं आता। अतः इस मामले में सावधान रहिए—अफसर से स्पर्धा करने की कोशिश न कीजिए।

अफसर तीनों लोकों में यदि किसी से डरता है तो वह है उसकी बीवी। अतः आपको चाहिए कि अफसर की पत्नी को दान-मान-सम्मान से प्रसन्न करें। वह प्रसन्न होगी तो अफसर तो अफसर उसके बाप को भी प्रसन्न होना पड़ेगा।

अफसर से मुलाकात करना "आ बैल मुझे मार" कहने जैसा होता है। अतः उसकी मुलाकात से बचिये यदि उससे मुलाकात करना आवश्यक हो ही जाए तो ऊपर दर्शायी आचार-संहिता का पालन कर अफसर को प्रसन्न कीजिए। वरना

०००

एक शोध प्रलाप–मिर्चो पर

जब अपने अधिकाश यार-दोस्त किसी न किसी विषय पर शोध करके डाक्टर बन गए और उनमे से भी अधिकाश डाक्टर बनते ही या तो चोटी क लेखको म गिने जाने लगे अथवा समीक्षक मान जाने लग गए, तो हमे बाकायदा मिर्ची लग गई और हमने भी डाक्टर बनने की ठानी। डाक्टर से मेरा अर्थ उस कैंची-छुरी छाप डाक्टर से नही है। मेरा अर्थ तो उस डाक्टर से है जो बिना छुरी कैंची की सहायता के ही अच्छे-अच्छो की चीर-फाड कर दे। अर्थात् उनका शोधन कर डाले। अर्थात् किसी भी विषय की अपने ढग से व्याख्या करक पी-एच० डी० की भारी सी डिग्री हासिल कर ले। बस यह डिग्री मिली नही कि वह व्यक्ति डाक्टर बन जाता है। उसे किसी भी विषय (और व्यक्तित्व भी) की चीर-फाड करने का लाइसेंस मिल जाता है। अब किसी को मिर्ची लगती है तो लगे उसकी बला से।

जिस तरह किसी कन्या का विवाह करने क पूर्व दहेज का प्रब ध करना आवश्यक है उसी तरह पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त करने के लिए गाइड की शरण मे जाना आवश्यक होता है। वैसे तो हमारे देश मे गाइडो की कमी नही है। हर महाविद्यलय मे दस-पाच प्रोफसर होते ही है और अभी तक तो मुझे कोई ऐसा प्रोफेसर नही मिला जो स्वय को साक्षात् सरस्वती पुत्र से कम समझता हो। फिर भी शोधार्थी के लिए आवश्यक है कि वह इनमे स उस महान गाइड की शरण म जाए जिसका नाम पी-एच० डी० की डिग्री मिलन की गारंटी हो।

मैं इस मामले मे काफी भाग्यशाली रहा। प्रथम प्रयास मे ही श्रीमान शोधाचाय जी स मुठभेड हो गई और वे भी मुझ जैसे प्रतिभाशाली शोधछात्र को पाकर प्रसन्न हुए। मेरी प्रसन्नता का तो पार ही ना था। मैंने जब उन्हे अपना मन्तव्य बताया तो उन्होंने सैकडा विषया का ढेर लगा दिया मेरे सामने।

लेकिन मैं तो एकदम निराला विषय चुनना चाहता था। ऐसा विषय जिस पर शोध करने का किसी ने साहस ही न किया हो। अतः मैंने उन सभी विषयों पर अपनी नापसदगी जड़ दी। तब शोधाचार्य जी ने मुझसे मेरी पसंद जाननी चाही। अब मुझे यदि विषय की जानकारी होती तो फिर उनका पल्लू पकड़ने की क्या आवश्यकता थी मुझे? मैं चुप ही गया तो उन्होंने कुछ सोचकर आठ दस निराले विषय मेरे सामने रखे। लेकिन ये विषय भी मुझे नही जंचे। मेरा दिमाग भी सूरज के घोड़ों की तरह दौड़ लगा रहा था किन्तु अब तक किसी विषय की टोह न पा सका था।

अब हम दोनों हैरान-परेशान, टुकुर-टुकुर एक-दूसरे के मुखड़े निहार रहे थे। अचानक ही मुझे ध्यान आया कि मैंने शोध करने का निर्णय मिर्ची लगने के कारण लिया था और यह बात मैंने शोधाचार्य जी के सामने धर पटकी। वे गद्-गद् हो उठे। फौरन बोले-'सैकड़ों शोध छात्रों को मैंने डाक्टरेट करायी है मगर तुम सा मेधावान छात्र मैंने इससे पहले नही देखा। तुम बारीक से बारीक पाइंट पकड़ सकते हो। तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है इसमें कोई संदेह नही। तुम फौरन शोधकार्य शुरू कर दो। तुम्हारे शोध का विषय होगा 'भारतीय संस्कृति और मिर्ची'।

यह विषय हमें भी जंच गया और हमने शोधाचार्य जी के चरण पकड़कर कहा बस गुरु देव! विषय तो मिल ही गया। कृपया अब बताइए आगे किस तरह बढ़ा जाए।"

अपने चरणों को झटके के साथ मेरे हाथों से मुक्त करने के बाद शोधाचार्य जी के मुखार बिन्दु से उपदेशों का जो सिलसिला चला, वह हमारे लिए परम-ज्ञानदायी था। मैं दत्तचित्त रहा—सुनता रहा।

और उनके मार्गदर्शन में मैंने शोध पूरा कर अपनी थीसिस बोर्ड के मत्थे मार दी। मुझे मालूम है चूंकि मेरे गाइड शोधाचार्य जी है, कोई माई का लाल मुझे डाक्टर बनने से नही रोक सकता। बस बोर्ड की औपचारिक घोषणा का इतजार है। घोषणा होते ही मैं अपना शोध प्रबंध पुस्तकाकार रूप में आपके हित के लिए प्रकाशित कराऊंगा। किन्तु उससे पहले, जिस तरह अधिकांश

उपन्यासकार अपने उपन्यास के प्रकाशन के पूर्व उसे किसी बड़ी पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपवा लेते हैं, उसी का अनुसरण करते हुए अपने शोध प्रबंध के कुछ प्रमुख मुद्दे, आपकी सुविधा के लिए फिल्मी ट्रेलर की तरह आपके सामने प्रकट कर देता हूँ।

सर्वप्रथम तो यह जान लीजिए कि मिर्ची क्या है। मिर्ची हरी भी हो सकती है—लाल भी और काली भी। वह लम्बी भी हो सकती है और गोल भी। मगर यह आवश्यक है कि वह तीखी हो—चरपरी हो। यदि वह तीखी नहीं है तो मिर्ची का रूप धारण किये हुए भी वह मिर्ची नहीं है। मिर्ची सामान्यतः मसाले के रूप में प्रयोग में लाई जाती है। मगर यह उसका उपयोग नहीं है। उसका असली उपयोग है—किसी की आंख में झोंका जाना। जब तक मिर्ची किसी की आंख में न झोंकी जाये, उसका जन्म व्यर्थ है। किसी की आंख में मिर्ची झोंककर अपना उल्लू सीधा करने में जो आनन्द प्राप्त होता है, उससे बढ़कर कोई आनन्द नहीं होता।

मिर्ची अपने आप भी लग सकती है। जब किसी को मिर्ची लगती है तो उसका हाल खुजली वाले कुत्ते सा हो जाता है। वह बौखलाया हुआ इधर-उधर चक्कर काटता है। जहाँ-तहाँ मुंह मारता है। यहां तक कि कभी-कभी तो स्वयं को ही काट लेता है। लहूलुहान हो जाता है मगर उसके जी को चैन नहीं मिलता।

मिर्ची किसको कब और क्यों लगती है, यह भी जान लीजिए। एक छात्र को तब मिर्ची लगती है जब उसका प्रतिद्वंद्वी उससे अधिक अंक प्राप्त कर ले। एक स्त्री को तब मिर्ची लगती है जब उसका पति किसी अन्य महिला की प्रशंसा करे। एक अधिकारी को तब मिर्ची लगती है जब उसका कोई सहयोगी उससे अधिक सम्मान पाए। एक नेता को तब मिर्ची लगती है जब उसका प्रतिद्वंद्वी मंत्रीपद पा जाए और वह टापता रह जाए। मिर्ची लगने का सबसे बड़ा मरीज होता है—साहित्यकार नाम का जीव। उसे अनेक कारणों से मिर्ची लगती है। जब उसकी रचना किसी पत्रिका से वापस आ जाए, कोई दूसरा साहित्यकार मंच पर उससे अधिक वाहवाही प्राप्त करे, स्थानीय संस्थाओं द्वारा उसे पूछा न जाए अन्य

साहित्यकार कहीं पुरस्कार पा जाए , कोई उसकी रचना की प्रशंसा न कर अथवा कोई व्यक्ति दूसरे गुट के किसी साहित्यकार की उसके सामने ही प्रशंसा शुरू कर दे इत्यादि-इत्यादि।

कम से कम भारत में तो कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जिसे मिर्ची न लगती हो। भारत का इतिहास भी मिर्ची लगने की घटनाओं से भरा पड़ा है। अनेक युद्धों का कारण बस यही मिर्ची लगना रहा है।

इसी प्रकार और भी कई बातें हैं जो मिर्ची का महत्व सिद्ध करती हैं और यह स्पष्ट करती हैं कि मिर्ची भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारतीय संस्कृति को मिर्ची से अलग करके नहीं देखा जा सकता। अर्थात् मिर्ची शाश्वत् सत्य है, अपराजेय है अमर है, अमिट है। मिलावटखोर लाख प्रयत्न करें, मिर्ची का महत्व समाप्त नहीं कर सकते। इति श्री।

o o o

बाज आए ऐसो अफसरो से

जब भी बास को हुक्म चलाते देखता, मन मे एक हूक सी उठती—
"क्या कबाडा किस्मत पायी है मैंने जो एक टुच्चा सा बाबू बनकर रह गया। रोज रोज अफसर की डाट सुनना, दिन भर हुई बइज्जती पर मन ही मन कुढते रहना किन्तु मुह से कुछ भी न बोल पाना। कैसी वाहियात जिन्दगी है यह? मन बार-बार मचल उठता—मन मे आता—इस बुड्डे-खूसट को उठाकर फेक दूँ आफिस स बाहर और बैठ जाऊँ दनाक स उसकी कुर्सी पर। फिर मैं भी उसी की तरह मातहतो पर रौब गालिब करू। रोज नया सूट बदलूगा, नई-नई टाई, नए-नए बूट पहनकर आया करूँगा दफ्तर। खूसट किस तरह अकड कर बैठता है—रिवाल्विग चेयर पर। मर जाय तो छुट्टी मिले। किन्तु इसके मरन स भी क्या फर्क पडता है। यह मर भी जायेगा तो कोई और खूसट इसकी जगह आ जायगा नही-नहीं, मै स्वय ही अफसर बनूगा। कैस भी हो "

कहत है समय आने पर घूर के भी दिन फिरते हैं। फिर तो मै मै था। अपने भी दिन फिर गये और मैं अफसर बन गया। उस दिन म गुब्बारे-सा फूल उठा था। देर किए बिना ही पहुँच गया था उस शाखा मे जहा इन्चाज के रूप मे मेरी पोस्टिंग हुई थी।

मैं बाकायदा सूट-बूट स लैस होकर दफ्तर पहुँचा। आफिस म कदम रखत ही मेरी नजर सारे हाल मे घूम गई। सारा स्टाफ अपने-अपने काउन्टर पर सिर झुकाए अपन काम मे मशगूल। मुझे देखते ही अनगिनत हाथ, अभिवादन के लिए उठ गये। मैंन सिर झटक कर, सारे अभिवादनो का उत्तर एक साथ दे दिया और उठे हुए हाथ फिर काम म लग गये। कही स फुसफुसाहट उभरी थी- बडा खूसट दिखता है। मैंने सुनकर भी अनसुना कर दिया था इसे। (ऐसी छोटी-छोटी बातो पर कोई भी समझदार अफसर ध्यान नही देता।)

मैं शान से साथ अपने लिए बने केबिन में घुस गया। साफ चमकती मेज पर एक शानदार कीमती ग्लास, दायीं तरफ खूबसूरत केलेंडर। उसम थोड़ा सा हटकर, मेज के बीचों-बीच, सुनहरा पेन स्टैण्ड, बेशकीमती इम्पोर्टेड कलम खूबसूरत ढंग से सजी हुई थी। टेबल पर तीन साफ चमकते हुए टेलिफोन—इंस्ट्रूमेंटस भी सजे हुए थे। केबिन काफी सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा हुआ था। केबिन में ही बायीं ओर बाथरूम अटेच था। बाथरूम सिर्फ बास के लिए ही था। जर्नसाधारण के लिए निषिद्ध था यह बाथरूम। मैं उत्सुकता दबा सकने में सफल नहीं हुआ और बिना आवश्यकता ही बाथरूम में घुस गया। अहा हा सारे फर्श और दीवारों की आधी ऊंचाई तक कीमती टाइल्स जड़े हुए थे। दीवारें भी बराबर चमक रही थी। बदबू अथवा गंदगी का नाम निशान ही नहीं। ऐसा तो अपना रिहायशी घर भी नहीं। मगर अब इसकी भी चिंता नहीं क्योंकि हर अफसर को एक सुंदर बंगला मिलता है, सो मुझे भी मिल गया था। हाँ तो इस तरह अपना शानदार केबिन देखकर अपना अट्ठाइस इंची सीना फूलकर अड़तीस इंची होता महसूस हुआ।

बाथरूम से निकलकर अपनी चेयर पर अभी बैठा ही था कि फोन की घंटी बज उठी। उसका रिसीवर उठाया ही था कि दूसरा फोन भी घनघना उठा। दूसरे हाथ में उसका रिसीवर भी लपक लिया मैंने। मगर आधा मिनट भी नहीं बीता था कि तीसरा फोन भी टनटनाने लगा। दो तक तो गनीमत थी किन्तु तीसरे फोन ने मुझे घनचक्कर बना दिया। आखिर दो ही तो हाथ हैं मेरे जिनसे दो रिसीवर मैंने पहले ही पकड़ रखे थे। आखिर तीसरे फोन के लिए तीसरा हाथ कहाँ से लाता ?

इधर दोनों फोन वाले— हलो हलो' चीखे जा रहे थे और उधर तीसरा फोन ने ही। शायद रिंग करने वाले ने तंग आकर लाइन काट दी थी। तीसरा फोन खामोश हुआ तो मेरी जान में जान आयी। पहले वाले दोनों फोन निपटाए ही थे कि चपरासी ने दो कार्ड लाकर मेज पर रख दिये। मैंने कार्ड देखे बिना ही उन्हें भेजने का आदेश दे दिया और अकड़कर बैठ गया अपनी रिवाल्विंग चेयर पर।

चपरासी के बाहर जाते ही दो सज्जन जिनका स्वास्थ्य आवश्यकता से अधिक अच्छा था, केबिन म प्रविष्ट हुए । मैं उन्हे सीट आफर करन म झिझक रहा था । कही ये सीट पर बैठे और मगर ये बैठ गय और मेरी आशका निराधार ही रही । व दोनो नही एक सेठ एव बिल्डिग का मालिक था । दूसरा भुनभुनवाला हमारे प्रतिष्ठान का वेल्युड कस्टमर था । चूकि हमारे प्रतिष्ठान की एक और शाखा नगर मे खुलने जा रही थी, उसक दफ्तर क लिए य सज्जन अपनी बिल्डिग आफर करने आये थे । भुनभुनवाला अपनी प्रतिष्ठा क बूत पर वह बिल्डिग मुझस मजूर कराना चाहता था । मगर उन्हे घोर आश्चय हुआ जब मैंन उन्ह दुत्कार दिया । आखिर मैं अफसर था । कोई घसियारा नही जो किसी ऐसे-गरे का लिफ्ट दता । सेठ ने आग्नेय नेत्रो म घूरा था । मुझम उसकी आखें कह रही थी— 'फँसना बेटा मरे चगुल मे"। मैंन भी इस भाव म सिर झटक दिया—"बहुत देखे हैं तुम जैसे ।"

व नुढकते स केबिन से निकले । उनके पीछे-पीछे ही मेरी निगाह भी घिसट रही थी । वे केबिन स निकल गय किन्तु मरी निगाह हाल म उस जगह अटक गई जहाँ काउन्टर पर एक सज्जन, जिन्ह मैं सयोग से पहचानता भी था समाधि की मुद्रा मे बैठे हुय सामने कुर्सी पर बैठ दूसर क्लक को भाषण सुनान मे मग्न थे । मेरा पारा सातवे आसमान को पार कर आठवे आसमान तक चढ गया—"मेरे आफिस म रहते यह बदतमीजी' । फौरन घण्टी दबा दी । घण्टी बजते ही चपरासी, अलाउद्दीन क चिराग के जिन्न सा मेरे सम्मुख आ खडा हुआ । "मि० कपूर को बुलाओ' । मुझे उम्मीद थी कि चपरासी मेर आदश पर दौडा जायगा और कपूर की गदन पकडकर घसीट लायगा । मगर एसा कुछ न हुआ । वह तो सिर झुकाये वही खडा था । अब तो मेर क्रोध का ठिकाना नही रहा । एक अदना सा चपराची अफसर के आदेश की अवहेलना कर ।

'सावत" मैं चीख उठा ।

"यस सर ।"

' मैंन बकवास की है कि मि० कपूर को बुलाओ "

"जी जी मगर "

"व्हाट मगर ? फौरन बुलाओ ? '

चपरासी सहमता सा मेरे कदमों मे केबिन से बाहर की ओर रेंगा। उसके चेहरे पर बिलकुल वैसे ही भाव थे जैसे कसाई के गंडासे के नीचे पड़े बकरे के चेहरे पर होते हैं। किन्तु वह गया। उसे जाना ही पड़ा।

चपरासी को गये दो ही मिनट हुये होंगे कि केबिन का दरवाजा भड़ाक से खुल गया। मेरा गुस्सा गायब हो गया और उसकी जगह आश्चर्य ने अपना अधिकार जमा लिया था। कपूर लेटेस्ट फैशन में सजा व्यंग्यात्मक मुस्कान लिये फौजी सैल्यूट मार रहा था।

उसके इस ऐक्शन से मैं सहम सा गया था। किन्तु हिम्मत बटोरकर आवाज को कठोर बनाकर बोला (यह अलग बात है कि मुझे स्वयं अपनी आवाज बकरी जैसी मिमियाती लग रही थी) "मि० कपूर ?"

"हाँ जनाब" कमर लचकाते हुये बोला था कपूर।

'क्या आफिस में काम करने का यही तरीका है ?'

"फिर कौन सा तरीका है सर ?" प्रश्न पर प्रश्न ठोक दिया था उसने।

"मि० कपूर आपको मालूम है आप किससे बात कर रहे हैं ?"

"आफकोर्स मि० सान्याल से और यह भी जानता हूँ आप मेरे बॉस की कुर्सी पर बैठे हुये हैं।"

' इसके बाद भी यह बदतमीजी।"

"कैसी बदतमीजी सर।" कटु मुस्कान थी उसके चेहरे पर।

मेरा गुस्सा फिर भड़क उठा— मि० कपूर यदि आपकी यही गतिविधियाँ रहीं तो मुझे ऊपर शिकायत करनी पड़ेगी। जानते हो फिर क्या होगा ?"

' क्या होगा ?" वह अब भी मुस्कुरा रहा था।

' सस्पेंशन।'

"रियली ?"

"सर्टेनली" दृढ़ स्वर में कहा था मैंने।

'अच्छा कौन से स्टेशन से बोल रहे हैं आप ?"

"व्हाट नानसेन्स ! तुम्हें बात करने की तमीज नहीं।"

' आपको है क्या ?"

'व्हाट शटअप ईडियट।"

'मि० मुह म लगाम लगाओ वरना ''

"आई से गेट आउट ।"

"अरे तो चीख क्यो रह् हो गला खराब हो जायगा ।"

और जालिम प्यार से पुचकारते हुये बोला था, "अच्छे बच्चे शांति म रहते हैं ।" नालायक कहीं का ।

मैंने पक्का निश्चय कर लिया था इस कपूर की शिकायत उच्चाधिकारियो से करु गा मगर दूसरे ही दिन चेयरमन का फोन मिला था—"मि० सायाल प्रमोट होत ही आपन ऊटपटाग हरकतें आरम्भ कर दी ?"

"जी-जी सर ! क्या कह रहे हैं आप ?"

"मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ । मि० झुनझुन वाला ने तुम्हारी शिकायत की है । साथ ही यह भी पता चला है कि तुम्हारा व्यवहार स्टाफ के साथ भी ठीक नहीं है ।"

'जी मगर ।"

"अगर-मगर कुछ नही । तुम्हे ब्रांच का काम अच्छी तरह चलाने भेजा गया है न कि बिगाडने । आगे ऐसा नही होना चाहिए ।" और बिना कुछ सुने फोन बद कर दिया था कमबख्त ने । उस दिन आफिस घूमता सा प्रतीत हुआ था मुझे और दिल डूबता सा लगता रहा । गनीमत है कि डूबा नही ।

उस दिन के बाद रोज आफिस आता किन्तु सिर झुकाये । सारी अकड गायब हो चुकी थी । कपूर बडी व्यग्यात्मक मुस्कान के साथ मुझे घूरते हुये कोई फब्ती कस देता । उसकी देखा-देखी दूसरे कर्मचारी भी मेरा मखौल उड़ाते ।

उपयुक्त घटना को कुछ ही दिन बीते होंगे कि मेरा ट्रासफर आर्डर आ गया । फिर वो ट्रान्सफर का ऐसा चक्कर चला कि सात दिन इधर दो चार दिन उधर । फिर तीसरी जगह चौथी जगह फिरकनी की तरह घूमने लगा मैं ।

अब सोचता हूँ इस अफसरी से तो वह क्लर्की ही अच्छी थी । न अफसर बनता और न यह बला गले पड़ती । मगर अब हो ही क्या सकता है ।

० ० ०

हड़ताल ऋतु आयी री सखि

हे सखि ! लम्बे इन्तजार के बाद फिर से हड़ताल ऋतु आई है। जगह-जगह प्रदर्शन हो रहे हैं। नेताओं के भाषण हो रहे हैं। मांग-पत्र पेश किये जा रहे हैं। कहीं अनशन की चेतावनी दी जा रही है। कहीं अनशन हो रहे हैं। तो कहीं वरिष्ठ नेता अथवा मंत्री के हाथों से सन्तरे का रस पीकर अनशन तोड़े जा रहे हैं। कितनी सुहानी है यह ऋतु। किन्तु तुम तो एकदम निर्विकार बैठी हो। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम इस ऋतु के बारे में जानती ही नहीं अन्यथा इस तरह मातमी सूरत बनाकर न बैठी रह पाती। मैं तुम्हें बतलाती हूँ—ध्यान देकर सुनो।

अन्य ऋतुओं की तरह, हड़ताल ऋतु का कोई निश्चित समय नहीं हुआ करता। यह ऋतु कभी भी आ सकती है। सामान्यतः यह ऋतु हमेशा बनी रहती है। कभी-कभी विशेष परिस्थिति में ही यह ऋतु समाप्त होती है अन्यथा नहीं क्योंकि इस ऋतु के अनन्त कारण हैं जिनकी संख्या बता पाना अथवा गिना पाना श्रीहरि के नाम गिना पाने से भी अधिक कठिन है। इनमें से कुछेक प्रमुख कारण मैं तुम्हें बता रही हूँ। सर्वोपरि है—छात्रों की समस्याएँ। ये समस्याएं भी अनंत हैं—जैसे परीक्षा तिथि। कोई भी तिथि तय की गई हो परीक्षा के लिए यह सर्वमान्य सत्य है कि वह तिथि छात्रों को पसन्द नहीं आएगी क्योंकि यह तिथि उनसे पूछे बिना ही तय कर दी जाती है। अब उस तिथि को आगे बढ़वाकर छात्रों द्वारा स्वीकृत तिथि को तय करने के लिए हड़ताल की जा सकती है। फिर कुछ दूसरे छात्रों द्वारा उनके विरोध में हड़ताल की जा सकती है। उसके बाद जब तीसरी नई तिथि तय कर दी जाती है तो छात्रों का तीसरा गुट (या पहला गुट) उस तिथि की खामियाँ बताते हुए अगली तिथि तय करने के लिए हड़ताल कर सकता है। इस प्रकार हड़ताल का अटूट क्रम चलता रह सकता है।

परीक्षा तिथि के अतिरिक्त भी छात्रों के पास कई कारण होते हैं—हड़ताल के लिए। यथा—प्राचार्य का कड़ा रुख, सख्त अनुशासन, यूनीफार्म पहन कर और सही समय पर आने के लिए दबाव डाला जाना, पढ़ने का मूड न होना, शिक्षक द्वारा अध्ययन के लिए कड़ा रुख अपनाना, छुट्टियों की कमी के कारण सारी फिल्में न देख पाना, परीक्षा हाल में निरीक्षकों द्वारा नकल करते पकड़े जाना, आदि-आदि। इन समस्याओं के उन्मूलन के लिए हड़ताल की जा सकती है तो दूसरा गुट इसके विरोध में हड़ताल के लिए स्वतन्त्र होता है।

इसी तरह हड़ताल के लिए राजनेताओं के पास भी अनगिनत समस्याएँ होती हैं—जैसे उनकी कुर्सी छिन जाना किसी एक नेता का लगातार कुर्सी पर बना रहना, किसी शीर्षस्थ नेता के आदेश पर अथवा चूंकि काफी समय से हड़ताल नहीं हो रही है इसलिए भी हड़ताल की जा सकती है।

इसके अलावा और भी कारण हैं—जैसे बस्ती में जलपूर्ति की व्यवस्था, आवागमन की व्यवस्था, सुरक्षा और शान्ति, जल निकास और सफाई का अभाव, बढ़ती कीमतें, घटती कीमतें, राशन दुकान न होना अथवा उसके संचालक की मनमानी। (अवसर उसका नियमानुसार कार्य करना ही मनमानी कहलाती है) इन सभी समस्याओं को हल करने का एकमात्र साधन हड़ताल है। हड़ताल कीजिए और समस्या का समाधान पाइए।

अरे सखि! तुमने व्यर्थ ही हड़ताल के नाम पर नाक मुंह सिकोड़ ली है। शायद तुमने इसे नुकसानदेह समझ लिया है। नहीं सखि नहीं। इससे कभी कोई हानि होती ही नहीं। तुम पूछ सकती हो कैसे? वह इस तरह कि हड़ताल के समय दुश्मन भी एक हो जाते हैं। एक होकर प्रदर्शन करते हैं। तोड़फोड़ पत्थरबाजी करते हैं। कभी-कभी आगजनी भी कर डालते हैं। एकता का शानदार प्रदर्शन होता है—हड़ताल के समय पर। शायद तुम कहोगी कि तोड़फोड़ और आगजनी से तो हानि होगी ही। मगर यह तुम्हारी भूल है। क्योंकि हड़ताल के दौरान वे ही वस्तुयें जलायी या तोड़ी जाती हैं जिनका अस्तित्व समाज के लिए खतरनाक होता है। तुम्हें याद होगा—दो-तीन साल पहले हड़तालियों ने राज्य परिवहन निगम के एक डिपो में खड़ी कई बसें जला

डाली थी। ये सभी गाडियाँ खस्ता हालत में थीं। उनके अधिकांश पुर्जे गायब थे जिनके गायब होने का पता सिर्फ गायब करने वालों को था। अगर वे बसें जलायी नहीं जाती तो उनकी पोल खुल जाती। फिर किसी की नौकरी छूटती या कोई जेल जाता। चूंकि बसें जल गईं, उनके साथ ही जल गये पुर्जे गायब होने के सबूत। इस तरह कई व्यक्ति बेरोजगार होने से बच गये।

दूसरी बात है तोड़फोड़ की। हड़ताल के समय केवल आफिसों की खिड़कियों में लगे कांच ही तोड़े जाते हैं। तुम्हीं बताओ दफ्तरों की खिड़कियों में कांच लगाने की जरूरत ही क्या है। चूंकि कांच पारदर्शी होता है इस कारण दफ्तर में काम करने वाले कर्मचारियों की निगाह मेज पर पड़ी फाइल की जगह खिड़की के कांच से बाहर दिखाई देने वाले सौंदर्य पर रहती है। दूसरी बात यह है कि कांच लगे होने के बावजूद सुरक्षा के लिये खिड़कियों में लकड़ी के पल्ले लगाने ही पड़ते हैं जो कि व्यर्थ का अपव्यय होता है। जब हड़ताल के दौरान खिड़कियों के कांच टूटते हैं तो स्वाभाविक रूप से उन खिड़कियों में दोबारा कांच लगाने के बजाये लकड़ी के पल्ले ही लगाये जाते हैं। इस तरह एक गलत व्यवस्था में सुधार आता है और लकड़ी का काम करने वालों को रोजगार भी मिल जाता है।

तुम्हारे दिमाग में तीसरा सवाल शायद समय की बरबादी का है, तो सुनो। हड़ताल में समय का सदुपयोग ही होता है। हड़ताल के दौरान कोई भी व्यक्ति जिसका उस समस्या से दूर का भी सम्बन्ध होता है घर में निठल्ला बैठा रहना पसन्द नहीं करता। वह तुरन्त सक्रिय हो उठता है, नारे बाजी करता है घर में उसकी दबी हुई आवाज हड़ताली जुलूस में खुलकर उभरती है। मनचलों को छेड़-छाड़ का अवसर मिलता है। मिलन को तरसे प्रेमियों को मिलने का अवसर प्राप्त होता है। नेताओं को भड़ांस निकालने का, तो जेब-कतरों को धंधे का अवसर मिलता है। सुरक्षा व्यवस्था में संलग्न होने के कारण पुलिस जवानों की बाहों में रक्त का संचार ठीक तरह होने लगता है। लाठी चार्ज होने पर अनगिनत लाठियाँ टूटती हैं जिससे लाठी का व्यवसाय पनपता है। वहीं सड़क के किनारे बेकार पड़ी लोक निर्माण विभाग की गिट्टी

का सदुपयोग पत्थरबाजी में हो जाता है, जिससे गिट्टी तोड़ने वालों और सप्लाई करने वालों को काम मिलता है। सफाई कर्मचारियों को भी काम मिलता है। छोटे-छोटे प्रेसों को पोस्टर आदि छापने का काम मिल जाता है। इससे भी बढ़कर बात तो यह है कि हड़ताली नेताओं को अनशन तोड़ने हेतु मनाने के लिये वे नेता भी आने को मजबूर हो जाते हैं जो चुने जाने के बाद अपने क्षेत्र में आना भी पसन्द नहीं करते। हड़ताली नेताओं और राजनेताओं के फोटो खिंचने, फिर अखबारों में छपने का अवसर प्राप्त होता है, जिससे दोनों की पब्लिसिटी होती है। हड़ताली नेताओं का परिचय शीर्षस्थ राज नेताओं, मन्त्रियों आदि से हो जाता है और कभी कभी तो उन्हें राजनीति के क्षेत्र में नाम कमाने के अवसर प्राप्त हो जाते हैं और वे विधायक से लेकर मन्त्री तक बन जाते हैं। इसके उदाहरण देने की आवश्यकता तो है ही नहीं क्योंकि तुम स्वयं ऐसे हड़ताली नेताओं को जानती हो जो आज राजनीति के क्षेत्र में भी शेर हो गये हैं।

मैं समझती हूँ अब हड़ताल ऋतु का महत्व तुम्हारे दिमाग में आ गया होगा और अब तुम भी किसी हड़ताल की अथवा अनशन की योजना बना रही होगी।

○ ○ ○

विमोचन समारोह का रहस्य

मेरे एक साहित्यकार मित्र हैं। साहित्यकार का दोस्त साहित्यकार हो तो कोई आश्चर्य की बात नही है। फिर भी बात सोचने की है। सोचने की बात इसलिए है कि मैं तो एक छोटा सा साहित्य-सेवक मात्र हूँ, किन्तु वे बहुत बड़े साहित्यकार हैं। बड़े इसलिए कि उनके दो-तीन काव्य संग्रह (?) प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु मैं—मैं तो अभी प्रारंभिक अवस्था में ही हूँ। प्रकाशन का तो सवाल ही नही होता।

वैसे उन्हें उनकी मेजारिटी में साहित्यकार कम 'चबैल' अधिक माना जाता है। 'चबैल' शब्द उन्ही के साथियो नही नही श्रोताओ द्वारा आविष्कृत शब्द है। शायद 'चबाना' क्रिया से यह विशेषण बना लिया गया है अर्थात् जो चबाए वह चबैल। अब प्रश्न उठता है आखिर साहित्यकार (कवि) महोदय कैसे चाबते (चबाते) थे, तो आपको शायद याद होगा—'कान-खाना' एक मुहावरा है। खाना अर्थात् चबाना। निगलने के पहले चबाना जो पड़ता है। यह भाई अपने साथियो को श्रोता ट्रीट कर अपनी रचनाए (कवितायें) सहज ही सुना जाया करते है। जबकि उन श्रोताओ के लिए वे रचनायें काफी महगी पड़ती है। इस तरह उनके लिए, उनकी रचनाये सुनना अपने कान खिलाना' यानि चबवाना होता है। चूकि कवि महोदय उन कानो को खाते यानि चबाते हैं इसलिए चबैल हुए। उनकी रचनायें किसी बड़ी पत्रिका अथवा परिशिष्ट मे प्रकाशित नही हुई, फिर भी वे बड़े साहित्यकार हैं।

यद्यपि वे मेरे घनिष्ठ मित्र हैं किन्तु उनकी रचना सुनने का सौभाग्य अब तक मुझे प्राप्त नही हुआ।

एक दिन वे मेरे पास बड़े खुश-खुश पहुँचे। मैं भी हमेशा गमगीन सा रहने वाले दोस्त को खुश देखकर खुश हुआ। मगर उनकी खुशी का कारण मैंने नही पूछा, इस भय से कि कही प्रश्न पूछने से उनकी विचारधारा बहक न जाय और वे पुनः उदास नजर आने लगेंगे। मुझे पूछने की आवश्यकता पड़ी भी नहीं।

उन्होंने स्वय ही बता दिया—"भाई मेरा चौथा काव्य-सग्रह प्रकाशित हो रहा है। इस बार विमोचन किसी बड़ साहित्यकार से कराने की सोच रहा हूँ।"

भला मुझे क्या कर एतराज होता। कह दिया "अच्छी बात है। कब आयोजित कर रहे है विमोचन समारोह?" बस पूछने भर की देर थी कि उन्होंने एक छोटा सा किन्तु खूबसूरत कार्ड मेरे हाथ पर रख दिया। विमोचन समारोह अगले सोमवार को ही आयोजित था और इस समारोह मे मुझे भी साहित्यकार की हैसियत स आमन्त्रित किया था मेरे मित्र न। वर्णनातीत खुशी हुई मुझे। आखिर मुझे भी साहित्यकार मान ही लिया गया। भले ही मेरे मित्र न ही क्यो न माना हो। मैंन सहर्ष उनका आमत्रण स्वीकार कर लिया।

काफी इतजार के बाद आया सोमवार। आयोजन स्थल सार्वजनिक सभा भवन था जिसे शालीनता पूर्वक सजाया गया था। मुझे महसूस हो रहा था—काफी बडा आयोजन कर डाला है मित्र ने। और वास्तव म ही बडा आयोजन था वह। स्थानीय साहित्यकारो के अतिरिक्त पास ही के नगर के प्रमुख साहित्यकार जो नगर स प्रकाशित दो दैनिक पत्रो के मालिक भी हैं, को भी आमन्त्रित किया गया था। मैं सहमता-झिझकता सा हाल क भीतर घुसा। दोस्त न हसकर मेरा स्वागत किया। सादर मुझे मच तक ले गये। फिर मच पर मुझे उचित आसन दे पुन गेट पर आमन्त्रितो क स्वागत हेतु जा पहुँचे। मच पर स्थानीय सभी छोटे-बड साहित्यकार जमे हुये थे किन्तु अभी मुख्य अतिथि नही पधारे थे।

हाल के बाहर कार की घरघराहट सुनाई दी ही थी कि मच पर खलबली मच गई। मित्र न एक सहयोगी न तुर त पुष्पहार लाकर मित्र क हाथ म थमा दिया। मुख्य अतिथि महोदय आ पहुँचे है यह मैं समझ गया था। घनानन्द जी जैसे ही हाल क भीतर आय हम सभी उनके स्वागत मे खडे हो गये। उनके आसनासीन होते ही हम सब भी बैठ गये। हमारे बैठते ही मित्र महोदय न सभी को एक-एक पर्चा थमा दिया। पर्चा देखकर मुझे यही महसूस हुआ था कि यह कार्यक्रम का विवरण होगा। क्योंकि पर्चा बिलकुल उसी साईज का था जिस साइज की या तो कार्यक्रम विवरण पत्रिका होती है अथवा किसी कम्पनी के

विज्ञापन का फोल्डर। मगर नहीं, यह तो मेरा भ्रम था। यही तो वह काव्य संग्रह था जिसका विमोचन समारोह आज आयोजित था।

कार्यक्रम संचालक के स्वागत भाषण के बाद संपादक, जो स्वयं मित्रवर ही थे, ने संपादकीय पढ़ा। तत्पश्चात् काव्य-संग्रह में प्रकाशित कवियों ने अपनी-अपनी प्रकाशित रचनायें पढ़ी। निश्चय ही वे रचनायें अपनी समझ से बाहर थी। मेरा ख्याल है मंच पर उपस्थित अन्य साहित्यकार भी उन्हें (कविताओं को) नहीं समझे थे। मगर उपस्थित व्यक्तियों ने हर कविता की समाप्ति पर वाह-वाह कर तालियाँ अवश्य बजायी। (मुझे महसूस हुआ जैसे वे आह-आह के साथ ताली पीटकर अपना रोष प्रकट कर रहे हों।)

तत्पश्चात् अध्यक्ष धनानंद जी ने अध्यक्षीय भाषण करते हुये काव्य-संग्रह को साहित्य की एक और सीढ़ी निरूपित किया तथा कवि महोदय की तारीफ के पुल बाधते हुये उनके उत्तम तथा अनुपम प्रयास की सराहना (?) की। अंत में *मित्र महोदय ने कृतज्ञता ज्ञापन किया, "सभी आगन्तुकों ने अपना समय नष्ट* कर इस समारोह मे भाग लिया था इसलिये " इसी के साथ समारोह का समापन हो गया।

समारोह की समाप्ति के तुरन्त बाद हम सभी को बाजू मे ही बने एक और छोटे हाल मे ले जाया गया। वहाँ पर मित्र की ओर से स्वल्पाहार का प्रबंध किया गया था। स्वल्पाहार क्या पूरा भोज था वह। मेरी समझ मे नहीं आ रहा था आखिर उस आठ पन्ने के काव्य-संग्रह के विमोचन के लिये इतने खर्च का प्रयोजन क्या है। मगर कहा कुछ भी नहीं था मैंने।

अगले ही रविवार, मुझे उस खर्च का औचित्य विमोचन समारोह का महत्व समझ मे आ गया। नगर से प्रकाशित दोनों दैनिक पत्रों के साहित्य परिशिष्ट मे मेरे मित्र की रचनायें प्रकाशित हुई थी। साथ ही उनके काव्य संग्रह की समीक्षा भी प्रकाशित हुई थी और इसके साथ ही उनका नाम बड़े साहित्यकारों की लिस्ट मे आ गया था। अब उन्हें कोई 'चर्बेल' नहीं कहता। उनके नाम के आगे श्री और पीछे जी लग गया है तथा इस श्री और जी की तरह ही दो-चार चेले-चपाटी भी उनके आगे-पीछे लगे रहते हैं।

० ० ०

खोज एक किराये के मकान की

नौकरी के दौरान तबादले तो होते ही रहते है। ऐसे ही हमारा भी तबादला हो गया। तबादला हुआ और हम इस नगरी मे आ गये। हमारी सबसे पहली जरूरत थी एक मकान की। मकान की जरूरत आपको-हमको, सभी को होती है। अब हम तो ठहरे इस शहर से अनजान। सो हमने अपने कार्यालयीन-सहकारियों से बात चलायी।

हमारे एक सहकर्मी श्री चम्पत लाल जी, जो की हरफनमौला-टाईप के आदमी हैं, हम पर पसीज गये। उन्होंने हमसे पूछा—'आखिर आपको किस तरह का मकान चाहिये।' हम उनका प्रश्न समझ नहीं सके थे, फिर भी अपनी समझ के अनुसार उत्तर दे दिया—'बस एक परिवार आसानी से रह सके। बस, और मकान कैसा होगा।'

उन्होंने हमारे इस बचकाने उत्तर पर कुछ इस तरह का मुंह बनाया, मानो कुनैन की दो चार गोलियां एक साथ मुंह मे चली गयी हों। फिर वे बोले—'अमां यार! मेरा मतलब है-कच्चा-पक्का, बंद हवादार अंधियारा, उजियारा, पाखाना नल-पानी वाला एकांत में, बाजार की भीड़-भाड़ मे, सराय टाइप अथवा कोई बड़ा सा फ्लैट' पता नहीं वे और कितने प्रकार के मकान बताते कि इसी बीच हमे उनके प्रश्न का उत्तर सूझ गया, हमने बीच में ही टोककर टोकते हुए अपनी पसंद बतला दी।

हमारी पसंद मालूम होने हो हमारे दूसरे सहकर्मी चकमाराम जो तम्बाकू वाले पान की पीक पच्च से थूकते हुए बोल पड़े— 'तब तो पाण्डे जी आपके लायक एक मकान अपने मुहल्ले मे ही है। वैसे मैंने भी वह मकान देखा नहीं है, मगर मेरा ख्याल है, आपको अवश्य पसंद आयेगा।"

हमारी बांछे खिल गई। आखिर इतनी जल्दी हमारी जरूरत के मुताबिक मकान का पता चल गया था और यह कोई छोटी बात तो ना थी।

यद्यपि आफिस से छुट्टी होने मे अभी कुल आधा घंटा बाकी रह गया था किन्तु हम एक-एक मिनट पहाड जैसा लग रहा था। हमारा दिमाग मेज पर ढेर फाइलो से हटकर बार-बार एक मकान का नक्शा खीचने लगता—कमरे ऐसे होंगे, इस कमरे को ड्राइंग रूम बनाऊगा उसको बडरूम। इसको इस तरह सजाऊगा। इसी बीच मरी नजर उनके चेहरे पर घूम गई। उनके चेहर पर भी मुझे एक मकान की तस्वीर नजर आयी।

यद्यपि वह मकान हमारे आफिस स कुल एक मील दूर था मगर हम ऐसा महसूस हो रहा था जैसे हम सैकडो मील का सफर करक आय हो। रास्त म उन्होंने रामायण से लेकर जासूसी उपन्यासो तक की व्याख्या कर डाली थी।

हम उस मकान क पास पहुँच चुके थे। हमारे पहुँचने की दर थी कि मकान-मालिक जिनकी देह पर पता नहीं कितन वर्ष पहल धुले हुये कपडे शोभायमान थे तथा बाल ऐसे दिख रहे थे जैस, उन्होंने कभी कघी के दशन हो न किये हो, दौडते हुय हमारे स्वागत के लिये आ पहुँच। खर हमे तो उनके मकान स मतलब था सो उनसे कहा,—"हम आपका मकान देखना चाहते हैं।" इतना सुनते ही वे खुश हो मुस्करा दिये। उनका मुस्कराना हम ऐसा लगा कि उनका बस चले तो व हमे मकान की बजाये अपने मुह म ही रख ले।

मकान देखकर हमे ऐसा महसूस हुआ कि इस मकान म पुरातत्व विभाग को अवश्य ही दिलचस्पी लेनी चाहिये। हमारे विचार मे वह मकान कम से कम एक हजार वष पहले का बना हुआ होना चाहिय था। हम उधर गौर करत देखकर चकमाराम जी ने टोका—'चलिय भीतर दखत हैं। हमने भी यही उचित समझा।

अंदर जाने के लिये मकान का दरवाजा खोला गया। दरवाजा खुलते ही हम ऐसा महसूस हुआ कि हम सदह नक के दरवाजे पर खड हैं। फौरन ही हमारा हाथ रुमाल सहित नाक पर पहुँच गया। मकान मालिक महोदय कुछ खिसियाने से होकर बोले—'साहब, कुछ दिनो स यह खाली पडा है। इसलिये मैं आप के आने से पहले ही इसकी सफाई करा दूगा।'

खैर हम अंदर पहुँचे। मकान मे कुल तीन कोठरियाँ थीं। हर कोठरी का

क्षेत्रफल ज्यादा से ज्यादा एक बड़ी खाट जितना ही था। एक और छोटी सी कोठरी थी जिसकी चारों दीवारों तथा छत पर लगी हुई कालिमा बता रही थी, कि वह रसोईघर है किन्तु हमें बरबस ही कालकोठरी याद आ गयी थी।

शायद कालकोठरी भी ऐसी ही होती होगी। हमने मकान के भीतरी भाग के पूर्ण दर्शन की इच्छा से चारों तरफ नजरें दौड़ाई। दीवार पर जगह-जगह श्री गणेश के वाहनों के निवास-द्वार नजर आ रहे थे तथा यहां-वहां साक्षात् गणपति वाहन भ्रमण भी कर रहे थे। दीवारों पर पलस्तर नाम की चीज नहीं रही होगी—ऐसा उनकी स्थिति से साफ प्रकट हो रहा था। अचानक ही हमारी आंखें छप्पर की तरफ उठ गई। छप्पर पर नजर पड़ना था कि हम घबरा कर बाहर भाग लिए। असल में छप्पर से टूटे बांसों में फंसकर हुये सपर्प हमें नजर आ गये थे। और हमें ऐसा महसूस हुआ था कि बस वे सपर्प हमारी गंजी खोपड़ी चौपट करने ही वाले हैं।

हमारे पीछे-पीछे ही मकान मालिक और चकमाराम जी भी बाहर आ गये। मकान मालिक ने मेरा हाथ पकड़ते हुए (शायद उन्हें आभास हो गया था कि अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया तो हम वहां भी खड़े नहीं रहेंगे) पूछा—"क्या साहब! मकान पसंद आया?"

उनकी आवाज कुछ इस तरह की थी कि यदि हमने इंकार कर दिया तो वे रो ही उठेंगे। हमने उनसे किराया पूछ लिया तो वे खिलकर बोले—"आप तो अपने ही आदमी हैं। आप से क्या ज्यादा लूंगा। बस साठ रुपये दे दीजियेगा।"

अब हमारी किस्मत कहिए अथवा संयोग—दूसरे दिन जब हम आफिस पहुंचे तो साहब ने बड़े साहब का आर्डर मेरे हाथ में थमा दिया। यह हमारा तबादला कैंसिल किये जाने का आदेश था। हम उसी दिन शाम को उस भव्य मकान का नक्शा अपने दिमाग में सुरक्षित रखे इस नगर से विदा होकर अपने पुराने हैडक्वार्टर की ओर जा रहे थे।

० ० ०

अभिनदन

श्रीमान्,

आपकी प्रतिभा की आज्वल्यमान शिखा से ही साहित्याकाश दीप्त है। हम सभी आपकी देदीप्यमान लेखनी की प्रभा के सहारे ही आगे कदम बढ़ा सकने में समर्थ हो रहे हैं, अन्यथा उडुगणों की तरह क्षीण व क्षणिक प्रकाश लिए ज्योति की तलाश में, अंधकार में ही भटकते रहते। निस्सदेह आपकी लेखनी ने ही हमें मार्गदर्शन दिया है, प्रेरणा दी है, सम्बल दिया है। आप हम सभी तारागणों के बीच चन्द्रमा की तरह प्रभा-सम्पन्न ज्योति पुंज हैं। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि हम आगामी पूर्णिमा की रात्रि में आपका सान्निध्य प्राप्त कर सकें तथा आपका अभिनन्दन करते हुए आपका आशीर्वाद प्राप्त कर स्वयं का जीवन कृतार्थ कर सकें। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप हमें निराश नहीं करेंगे तथा उक्त अभिनन्दन समारोह हेतु स्वीकृति प्रेषित करेंगे।

आपकी दीर्घायु व स्नेह की कामना सहित,
आपके दर्शनाभिलाषी,
हम साहित्यकार वृन्द,
ब—नगर।

उपर्युक्त पत्र प्राप्त होते ही हमारा मन-मयूर पुलकायमान होकर नृत्य कर उठा क्योंकि कई वर्षों से हृदय में दबी आकांक्षा—अब पूर्ण होने जा रही थी। पत्र पढ़कर हम तुरन्त चौके की ओर दौड़, जहाँ हमारी श्रीमती जी बड़े बेमन से हमारे लिए पकौड़े तल रही थीं। बेमन से इसलिए कि उन्हें हमारा साहित्यकार होना कतई पसन्द नहीं था। न ही वे साहित्य का क ख ग ही जानती थीं। यहाँ तक कि उन्होंने स्कूल का मुह भी नहीं देखा था और जाने दीजिए। आगे की बात बताना ठीक नहीं। अगर यह बात हमने आपको बता दी और आपने उनसे कह दी तो हमें लेने के देने पड़ जायेंगे।

रसोई तक पहुँचने से पहले ही हमने आवाज़ लगाई—"अजी सुनती हो ?"

"हाँ, हाँ, सुनती हूँ। सुनती ही तो रहती हूँ। कान पक गये तुम्हारी सुनते-सुनते। कभी तो चुप रहा करो, क्या हो गया अब, कोई पहाड़ टूट गया या ?" उनकी रेलगाड़ी को लाल बत्ती दिखाकर रोकने हुए हमने उन्हें जल्दी से बताया—"भाई, देखो न-नगर से यह पत्र आया है ।"

"हाँ हाँ ज़रूर आया होगा, सैकड़ों आते हैं। जाते भी सैकड़ों हैं। कोई नई बात तो हो नहीं गई। पत्र ही तो आया है ?"

"अरी भागवान ! पूरी बात तो सुनो, यह रोज़ आने वाले पत्रों जैसा पत्र नहीं है। वे लोग मेरा अभिनन्दन करना चाहते हैं। इसके लिए मेरी स्वीकृति माँगी है उन्होंने ।"

"हाँ हाँ क्यों नहीं, वे भी तुम्हारे जैसे सिरफिरे होंगे जिन्हें एक पल भी घर में ठहरना नहीं सुहाता। कर लो मंजूर और चल दो अभी से"—और एक झटके के साथ उन्होंने कड़ाही चूल्हे पर से उतारकर नीचे रख दी। मानो वही कहावत हो गई—"आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास" आये तो थे खुश-खबरी सुनाने और यहाँ पकौड़े भी हाथ से गये। दस मिनटों के बाद उन्होंने कड़ाही फिर से चूल्हे पर रखी और पकौड़े तले।

जब तक पकौड़े तले जाकर, हमारे सामने प्लेट में आ नहीं गये, हमने चुप रहने में ही अपनी भलाई समझी। चुपचाप बैठे-बैठे श्रीमती जी का रणचण्डी-सा चेहरा देखते रहे। पकौड़े मिल जाने पर जल्दी-जल्दी साफ़ किये और आनन-फानन में स्वीकृति पत्र लिख डाला। पत्र को लिफ़ाफ़े में बन्द कर ही रहे थे कि ख़याल आया, अगर हमने इसे आज ही पोस्ट कर दिया तो वे लोग समझेंगे कि हम *अभिनन्दन* के लिए बेकरार ही थे—या बिल्ली भाग्य से छींका टूटते ही मानो साफ़ करने टूट पड़े। इस तरह हमारी इमेज ख़राब हो जायगी। हमारी इमेज साफ़-सुथरी रहे इसके लिए हमने पत्र पोस्ट करना स्थगित कर दिया।

खुशी के मारे हमारी भूख प्यास और नींद गायब हो चुकी थी। दिमाग़ में खलबली मची थी और जिह्वा अभिनन्दन के समाचार बिना छिपकर अति-इंद्रिया तक पहुँचा देने के लिए बेकरार हो रही थी। किन्तु हमने सब्र का बाँध

टूटन नहीं दिया क्योंकि अगर यह खबर हमारे प्रतिद्वंद्वियों को मिल जाती तो उनके द्वारा हमारे अभिनन्दन का प्रोग्राम कैंसिल करा दिये जाने का खतरा था। इसलिये हमने चुप्पी ही उचित समझी और किसी को बताये बिना, चार-पांच दिन बाद वह पत्र पोस्ट कर दिया।

राम-राम कर बीच के दिन व्यतीत हुये। पूर्णिमा का वह स्वर्ण दिवस आ पहुंचा जो कि हमारे जीवन का अविस्मरणीय दिन बनने जा रहा था। हम सुबह से ही यात्रा की तैयारी में जुट गये। यद्यपि इस बीच श्रीमती जी तानों के अनेकानेक उपहार हम देती रहीं, किन्तु हमने अपने अभियान की प्रसन्नता में उनकी एक भी बात पर ध्यान नहीं दिया। ध्यान दे भी नहीं सकते थे क्योंकि हमारे दिमाग पर तो अभिनन्दन समारोह के स्वप्निल चित्र छाये हुये थे।

हम बार-बार घड़ी देखते जा रहे थे क्योंकि गंतव्य शहर को जाने वाली गाड़ी बारह बजे छूटती थी। और हमें अंदेशा था कि कहीं ऐसा न हो कि हम लेट हो जायें और गाड़ी छूट जाय।

सारी तैयारी के बाद हमने जब घड़ी देखी तो नौ बज चुके थे। हमने संतोष की सांस लेते हुये जल्दी-जल्दी कपड़े बदले और श्रीमती जी द्वारा कृपापूर्वक बनाया गया नाश्ता खाकर स्टेशन की ओर दौड़ पड़े।

गाड़ी ठीक समय पर छूटी और ठीक समय पर गंतव्य पर पहुंच भी गई। स्टेशन पर हमारे स्वागत के लिये नगर के दर्जनों साहित्यकार उपस्थित थे। उस भीड़ में हमारा एक प्रतिद्वंद्वी भी शामिल था। उसे देखकर हमारा माथा ठनका, किन्तु तुरन्त ही बात समझ में आ गई कि वह भी हमारी ख्याति और प्रतिभा का कायल हो चुका है। इसलिये अब हमसे ताल-मेल बैठाने के चक्कर में है। मन में यह बात आते ही हमारा सीना कई गुना चौड़ा हो गया, गर्दन अकड़ गई। स्वागत मंडली ने गाड़ी से उतरते ही हमें फूलमालाओं से लाद दिया और उच्च स्वर में हमारी जय-जयकार की। जय-जयकार होते ही, प्लेटफार्म पर मक्खियों की भीड़ इकट्ठी हो गई और हम उनके बीच घिरे हुये ऊँट की तरह गर्दन उठाये, स्वयं को जान कैनेडी से भी कुछ अधिक समझने लगे।

विभिन्न नारों और जय-जयकार के बीच हम समारोहस्थल तक पहुँचे। वह एक शानदार दो मंजिला इमारत थी, जिसके सभा-भवन में अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया था। सभा भवन के पास काफी चहल-पहल नजर आ रही थी। कार्यक्रम आरम्भ होने में अभी काफी समय था इसलिये हमें सभा-भवन के बगल में ही निर्मित एक बैठक टाइप के कमरे में ले जाया गया। वहाँ आरामदेह गद्दे बिछे हुये थे, मसनदें लगी हुई थी। हम शालीनतापूर्वक आगे बढ़कर एक नरम मसनद के सहारे गद्दे पर पसर गये। यद्यपि हम थकावट का आभास भी नहीं हो रहा था, फिर भी हमने ऐसा प्रदर्शित किया मानो यात्रा में हमारी हड्डी-पसली एक हो गई हो। यहाँ आकर हमने इस साहित्यकार मंडली पर बहुत बड़ा अहसान किया हो।

थोड़ी ही देर बाद हमें, गुणवत्तापूर्ण जलपान भेंट किया गया जैसा कि हमने आज से पहले देखा भी नहीं था, जिसे देखते ही हमारी जिह्वा मचल उठी, किन्तु हमने यहाँ भी धैर्य बनाये रखा और आराम के साथ, यह दर्शाते हुये कि इस तरह का जलपान हमारे लिये नया नहीं है जलपान ग्रहण किया।

जलपान समाप्त होते ही हम सभा-भवन में ले जाकर नियत स्थान पर आसन दिया गया। हमने गर्व के साथ आसनासीन होते हुये, एक गर्वित नजर उपस्थितों पर डाली, फिर छल-भरी मधुर मुस्कान फेंकते हुये, हाथ उठाकर सभी का अभिवादन स्वीकार किया।

हमारे बैठते ही उद्घोषक ने कार्यक्रम आरम्भ करते हुये हमारा परिचय देने के लिये, स्थानीय साहित्यिक संस्था के सचिव को आमन्त्रित किया।

सचिव ने माइक सम्हालते हुये कहा—"उपस्थित सम्मान्य नागरिको! हर्ष का विषय है कि अपने क्षेत्र के महान साहित्यकार श्री हमारे बीच उपस्थित हैं और हमें उनका सम्मान करने का गौरव प्राप्त हो रहा है। आप सभी को ज्ञात होगा कि आज फागुन की पूर्णिमा है। आज के दिन होलिकादहन होता है। इसके दूसरे दिन रङ्ग खेला जाता है और सामान्य रूप से इसी दिन लगभग सभी नगरों में मूर्ख-सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। मैं श्रीमन् का परिचय देने से पहले अपने पूर्व कथन में थोड़ा सा सुधार कर रहा हूँ श्री जो

कि आपके सामने मंच के प्रमुख आसन पर विराजमान हैं उन्हें उच्चस्तरीय साहित्यकार होने का भ्रम है तथा वे अभिनन्दन समारोह का आमंत्रण प्राप्त होते ही दौड़े चले आये हैं। चूंकि वे यहां आ ही गये हैं तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम उनका यथायोग्य सम्मान करें। इस कारण हमने निश्चय किया है कि आगामी कल को बजाय आज ही बल्कि अभी मूर्ख-सम्मेलन सम्पन्न हो जाय तथा मैं श्रीमान् का नाम मूर्खाधिराज के पद हेतु प्रस्तावित करता हूँ।'

तुरन्त ही इस प्रस्ताव का समर्थन भी कर दिया गया और सभा-भवन में तालियों की गड़गड़ाहट और कहकहे गूंज उठे। हमारी हालत मूर्खाधिराज की पदवी पाकर शतरंज के पिटे मोहरा की तरह हो गई। फिर भी हमने अपनी झेंप मिटाने के लिये उपस्थित महानुभावों का अभिवादन किया। इसके पश्चात् हमारी जो लानत-मलानत हुई वह आपको न ही बताई जाय तभी ठीक है वरना आप भी हमारी खिल्ली उड़ायेंगे।

इस जाल से किसी तरह मुक्ति पाकर हम रात्रि में मिलने वाली गाड़ी से ही चुपचाप घर लौट आये। मगर आज तक इस बात का जिक्र किसी से करने की हिम्मत नहीं हुई बल्कि अपने नगर में भी हम काफी दिनों तक मुँह छिपाये घूमते रहे इस डर से कि कहीं यह किस्सा किसी को मालूम न हो गया हो। मगर ऊपर वाले को लाख सवा लाख धन्यवाद कि हमारे साथ क्या बीती यह कोई नहीं जान सका।

कहते हैं न दूध का जला छाछ भी फूंक फूंक कर पीता है सो अब हम किसी भी प्रकार का आमंत्रण प्राप्त होने पर पहले गुप्त रूप से उसकी उत्पत्ति की जाँच कर लेते हैं। तभी किसी आयोजन में पधारते हैं अन्यथा नहीं। आपको भी हमारी यही नेक सलाह है कि आप भी बिना ठीक छानबीन किये कोई निमंत्रण स्वीकार न करें।

o o o

मैं तो चला मरने

अभाव ! अभाव ! और कुण्ठाएँ ! कैसा जीवन है यह ? बाज आए हम तो इस जीवन से । ऐसे जीवन से मर जाना ही अच्छा । बार-बार यही विचार आता मन में । और एक दिन हमने निश्चय कर ही लिया कि आज हम इस नारकीय जीवन का अंत कर ही डालेंगे ।

सबसे पहले हमने यह तय कर लेना ठीक समझा कि मरने के लिए कौन-सी तरकीब का इस्तेमाल करना चाहिए । जो सुविधाजनक भी हो, जिसमें पीड़ा भी कम हो और मृत्यु भी निश्चित हो । इसके साथ ही एक बात और भी हमारे दिमाग में थी-वह यह कि हमारी मृत्यु कुछ इस तरह से हो कि उसे दुर्घटना समझा जाए । ताकि हमारे बीमे की रकम हमारी बीवी को मिल सके ।

सबसे पहले विचार आया कि पानी में डूबकर मृत्यु को गले लगाया जाए । आखिर नगर से होकर बहती हुई नदी किस काम आयेगी । कोई कठिन काम भी नहीं है यह । बस एक छलांग लगायी, पानी में डूबे और कुछ ही देर में सब कुछ समाप्त । तभी ख्याल आया हम तो तैरना जानते हैं । ऐसा भी तो हो सकता है कि हम पानी में डूबें, डूबते ही हमारा दम घुटने लगेगा । हो सकता है इसी कारण हमारा संकल्प भंग हो जाय और हम तैरकर फिर किनारे पर आ जायें, नहीं यह तरीका ठीक नहीं । फिर

अहा-हा-आइडिया ! कितना अच्छा सुयोग है । आज श्रीमती जी बीमार हैं । खाना हमें ही पकाना पड़ेगा । हम सारे कपड़े पहनकर ही खाना बनायेंगे । थोड़ा-सा तेल कपड़ों पर गिरा लेंगे और स्टोव इस तरह जलायेंगे कि हमारे कपड़े भी आग पकड़ लें । बस फिर क्या है—कपड़ों के साथ शरीर भी जलेगा और निश्चित मृत्यु । लेकिन यह भी तो हो सकता है कि तेल में मिलावट हो, वह आग ठीक से न पकड़े अथवा कपड़े ही ठीक से न जलें । तभी हमारे मन में

हम मर तो नही पायेंगे । हाँ हमारी योजना लोगों को मालूम जरूर हो जायगी, और हम फिर कभी भी मर नही सकेंगे । कुछ और सोचा जाय । बिजली के शॉक से ? लेकिन आजकल बिजली का कोई भरोसा है । कब बंद हो जाए, क्या ठिकाना । जहर खा लिया जाय ? किन्तु जहर भी तो असली नहीं मिलता । मिलावट के कारण जहर से मरने की कोई गारंटी नही या सीने में चाकू मारकर, लेकिन हम चाकू का निशाना लगाना तो आता ही नही । हो सकता है कि हम चाकू चलाये सीने पर और वह लग पसलियों की किसी हड्डी पर । परिणाम यह होगा कि हम मर तो नहीं पायेंगे । हाँ घायल होकर अस्पताल जरूर पहुँच जायेंगे । और हमारी योजना की गोपनीयता भंग हो जायगी । नहीं नही फिर

फाँसी ? यही ठीक रहेगा । मौत की पूरी गारन्टी है । लेकिन हमारा असली मकसद तो पूरा होगा ही नही । क्योंकि आत्म हत्या करने पर बीमा की रकम नही मिलती । फिर एसे मरने से क्या फायदा कि बीमा की रकम ही डूब जाये । फिर क्या हो ? हाँ, याद आया हम अपनी ड्यूटी के दौरान अक्सर दौरे पर जाना ही पड़ता है । क्यो न एसा करे कि दौरे पर जाते वक्त अथवा लौटते वक्त अपनी साइकिल किसी बस या ट्रक से लड़ा दी जाय । इस तरह मृत्यु भी हो जायेगी—यह भी एक्सीडेंटल डेथ । जिससे बीमा की रकम तो मिल ही जायेगी ऊपर से ड्यूटी पर होने के कारण कम्पेन्सेशन भी मिलेगा ।

एकदम ठीक, यही तरीका उचित रहेगा । तभी ख्याल आया अगर हमारे दुर्भाग्य से उस ट्रक या बस का ड्रायवर एक्सपर्ट हो, बिना शराब पिये ही ड्रायविंग करता हो और गाड़ी के ब्रेक सही हो एसी स्थिति में एक्सीडेन्ट तो होगा किन्तु सिर्फ हाथ पैर ही टूटेंगे । मृत्यु नही हो सकेगी । तब और इसके आगे हमारे दिमाग ने हड़ताल कर दी । हमारी विचारधारा को डेड-स्टाप लग गया । हम माथा पकड़कर वही बैठ गये ।

अचानक ही कही रेल की सीटी गूंजी और एक बिजली सी कौंध गई । हमारे दिमाग ने भी हड़ताल समाप्ति की घोषणा कर दी । और मरने का एकदम सही तरीका सूझ गया हमे । रेल हाँ रेल रेल के नीचे आ जाने

से, मरने के निन्यानवे प्रतिशत चांस है। तकलीफ भी नहीं। देखकर लोगों द्वारा बचा लिये जाने का खतरा भी नहीं। एक्सीडेंटल बेनिफिट भी। अरे! वाह रे मेरे दिमाग। क्या तरीका सोचा है। इससे बेहतर कोई और तरीका हो ही नहीं सकता। हमने तय कर लिया हम आज ही रेल के नीचे आकर कट मरेंगे।

चूंकि आज हमारे जीवन का अंतिम दिन था, इसलिये हमने आज जश्न मना लेने की सोची। सारी जिंदगी तो यूं ही बीत गई, कम से कम आज तो अच्छा खा-पी लिया जाये, अच्छे कपड़े पहन लिये जायें ताकि मरते वक्त दिल में कोई हसरत बाकी न रहे।

यद्यपि रेल से कट मरने में मृत्यु के निन्यानवे प्रतिशत चांस थे। फिर भी एक प्रतिशत शंका तो थी ही। और हम किसी प्रकार की भी शंका की गुंजाइश अपनी योजना में नहीं चाहते थे। इसलिये हमने जश्न की तैयारी के साथ ही ट्रेन आने का सही समय, उसकी स्पीड, विशेष रूप से लेबिल क्रासिंग से गुजरते समय की स्पीड का पता लगा लिया।

बढ़िया भोजन करने के बाद, सज-धजकर हम मरने चल दिये। स्टेशन पर जाकर पूछताछ खिड़की से गाड़ी के आने का समय एक बार फिर पता किया। इसलिये कि कहीं ऐसा न हो कि गाड़ी लेट आये और हम मरने के इरादे से जिस समय लाइन पर कूदें, गाड़ी आये ही नहीं।

पता चला गाड़ी सही समय से पन्द्रह मिनट लेट आ रही है। पूरी तरह इत्मीनान कर हम लेबिल क्रासिंग की ओर बढ़ गये। हम इस तरह चल रहे थे जैसे टहलने निकले हों। साथ ही इस बात के लिये भी हम सतर्क थे कि कोई हमारे आजू-बाजू न चल रहा हो, क्योंकि इससे यह खतरा था कि हम रेल की चपेट में आने ही वाले हों और बगल में खड़ा कोई व्यक्ति हमारी बांह पकड़ कर हमें पीछे खींच ले और हमारे इरादों पर झाड़ू फिर जाये।

हम आराम से क्रासिंग की ओर चले जा रहे थे कि क्या देखते हैं कि गाड़ी एकदम क्रासिंग पर आ चुकी है। अब हमारी योजना खटाई में पड़ रही थी किन्तु हम ऐसा सुनहरा अवसर खोना नहीं चाहते थे। इसलिये हमने चाल तेज

कर दो। (छोड़ सकते नहीं थे, क्योंकि इससे सबको मालूम हो जाता कि हम आत्म-हत्या करना चाहते हैं) लेकिन हाय रे दुर्भाग्य! जब तब हम ऑफिस पर पहुँचे गाड़ी यह जा वह जा। हमने दिल थाम कर कलाई पर बंधी घड़ी देखी तो पाया अभी गाड़ी का सही समय ही हुआ है। अर्थात् गाड़ी लेट न आकर सही समय पर ही आ गई थी। इसका अर्थ था कि पूछताछ खिड़की पर बैठे कर्मचारी ने हमें गलत सूचना दी थी। हम उसे मन ही मन हजारों गालियाँ देते हुये, मायूस होकर घर लौट आये। और साहब! तब से आज तक हम मौत के पीछे हथेली पर लड्डू रखे घूम रहे हैं लेकिन कम्बख्त मौत है कि पीछे मुड़कर ही नहीं देखती।

○ ○ ○

नेता जी की नर्क यात्रा

बड़ा गजब हुआ साहब, एक नेता जी नरकवासी हुए। नरकवासी इसलिए कि स्वर्गवासी तो सभी व्यक्ति होते हैं और हमारे नेता जी यह चाहते थे कि वे मरकर भी सबसे अलग रहें, जिस तरह वे अपनी जिन्दगी में सबसे अलग रहे। अलग से मेरा मतलब है निराले, यानि उनकी सानी का चिपकू दूसरा कोई नेता, इस दुनिया में नहीं था। चिपकू का अर्थ है जो हमेशा कुर्सी में चिपका रहा हो। इसके लिए उन्होंने कितने पापड़ तोड़े होंगे, इसका अंदाजा लगा पाना सहज नहीं है। चुनाव की घोषणा होते ही निर्दलीय बन जाना, चुनाव जीतकर बहुमत वाली पार्टी में शामिल हो जाना और मंत्री बना जाना, फिर भी जीवन-पर्यन्त बेदाग बने रहना (बेदाग का अर्थ राजनीति में, सब कुछ करते हुए भी गिरफ्त में न आना होता है।) यद्यपि इन्होंने वह सभी कुछ किया था, जो एक नेता को करना चाहिए, यानि भाषणबाजी (आश्वासनबाजी भी शामिल है।) बहानबाजी, मस्काबाजी, दगाबाजी, मक्कारी, बेईमानी, गबन, दो नम्बर के धन्धे, भाई-भतीजावाद और झूठ बोलने में तो वे माहिर थे ही इसलिये वे न भी चाहते तो भी उन्हें नरकवासी तो होना ही था।

नेता जी का नाम-अजी नाम में क्या रखा है, उनका नाम जो आपकी मर्जी हो रख लीजिये—कालूचन्द-मालूराम, झूठेलाल, मस्काराम, तिकड़मचन्द-बागड़ी लाल, वगैरह वगैरह इनमें से जो भी नाम आपको पसंद आये वही रख लीजिये।

हां तो एक नेताजी थे, वे नरकवासी हो गये, यद्यपि वे अभी नरकवासी होना नहीं चाहते थे, क्योंकि चुनाव सामने थे और वे एक बार फिर मन्त्री बन लेना चाहते थे। अपदस्थ नेता के रूप में नरकवासी होना उन्हें पसंद नहीं था। लेकिन मानवों को तिगनी नाच नचाने वाले को, यमदूतों की तिकड़ी के सामने

एक भी न चली। हां जो उनकी आत्मा को लेने तीन यमदूत आये थे, शायद धमराज भी जानते थे कि उनकी आत्मा एक यमदूत के वश की नहीं है।

तीनों यमदूत उनकी आत्मा को वश में करके वापसी यात्रा शुरू करना ही चाहते थे कि नेताजी की आत्मा ने मस्का लगाने की कोशिश की—"देखो भाई, मेरा-तुम्हारा कोई बैरभाव तो है नहीं, मतभेद हो सकता है। मतभेद होना राजनीति में कोई बुरी बात नहीं मानी जाती, इसलिए मुझ पर भरोसा करो, मुझे छोड़ दो, मैं अधिक समय नहीं चाहता। बस तीन माह का समय मुझे दे दो। इस बीच चुनाव हो जायेंगे मैं मंत्री बन जाऊंगा उसके बाद मैं सहर्ष तुम्हारे साथ चलूंगा, अथवा यदि तुम चाहोगे तो तुममें से एक को अपना निजी सेक्रेटरी बना लूंगा और बाकी दोनों को किसी न किसी आयोग का अध्यक्ष, यह मेरा पक्का वायदा है।

किन्तु हाय री मजबूरी, शायद वे तीनों ही यमदूत बहरे थे। इसलिए कि नेता जी की एक भी बात काम न आयी। यमदूत चुपचाप उनकी आत्मा को ले ही उड़े।

चूँकि नेताजी ने काफी अकलमन्दी से काम लिया था। उनके विचारानुसार अब तक नरकवासी होने वाले एकमात्र नेता वही थे, इसलिये उन्हें पूरा विश्वास था कि नरक में उनका भव्य स्वागत होगा। इसलिये मन ही मन वे काफी प्रसन्न थे। उन्हें विश्वास था कि नर्क लोक में भी वे अपना अलग स्थान बना लेंगे, और कोई न कोई कुर्सी हथिया ही लेंगे।

कुछ ही समय में, यमदूतों ने उनकी आत्मा को धर्मराज के सभा-भवन में ला पटका। नेताजी का रेशा-रेशा हाय-हाय कर उठा क्योंकि वे सड़े टमाटर, अण्डे आदि की मार खाने के तो आदी थे किन्तु इस तरह की चोट उनके बस की नहीं थी। फिर भी यह सोचकर कि वे तो बेचारे गूंगे, बहरे सेवक हैं। वे उनका महत्व नहीं समझ सकते, वे चुपचाप दर्द को अंदर ही अंदर पी गए।

अभी धमराज सभा में नहीं पधारे थे। अन्य सभासद भी अभी नहीं आये थे। इसलिये, वे यमदूत नेताजी की आत्मा को जमीन पर पटक कर उनकी निगरानी करते हुये खड़े थे।

नेताजी सोच रहे थे, जब धमराज आ जायें तो उनसे अपने अपमान की बात कहेंगे। धमराज निश्चित ही उनके इस अपमान के लिये लज्जित होंगे। क्योंकि उनकी ख्याति धमराज तक अवश्य ही पहुँच चुकी होगी। इतने वर्षों में अखबारों में होने वाला धुआँधार प्रचार व्यर्थ थोड़े ही जायेगा।

लगभग आधे घण्टे के भीतर सभी सभासद सभाभवन में पहुँच चुके थे। इसी बीच न जाने कहाँ से आकर धमराज सिंहासन पर विराजमान हो गये। नेताजी को उम्मीद थी कि धमराज आते ही उनका कुशल समाचार पूछेंगे, किन्तु धमराज ने मात्र एक उचटती-सी नजर उन पर डाली, फिर मुड़कर चित्रगुप्त की ओर देखा। चित्रगुप्त ने उनका आशय समझकर अविलम्ब खाता खोला और नेताजी की प्रशस्ति में अभिनन्दन पत्र पढ़ने लगे। धमराज और सभी सभासद ध्यानपूर्वक एक-एक शब्द सुन रहे थे। चित्रगुप्त द्वारा प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र का सार-संक्षेप यहाँ प्रस्तुत है —

"हे धमराज यह मानव आत्मा, जो आपके सम्मुख उपस्थित है, यह बहुत ही कृतघ्न, क्रूर और लालची आत्मा है। इसने न केवल अपने बंधु-बांधवों को धोखा देकर उनकी सारी सम्पत्ति हड़प ली बल्कि इसने सारे भारतवर्ष की जनता को धोखा दिया। कोई भी क्षण, इसके जीवन में ऐसा नहीं रहा जब इसने जन-कल्याण की बात सोची हो। यह तो हर क्षण दूसरों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करने की बात ही सोचता रहा। इसके लालच का हाल यह रहा कि इसने धन कमाने के लिए धोखा धड़ी, स्मगलिंग, करचोरी, गबन, यहाँ तक कि लूट-पाट सभी कुछ किया। सरकारी पदों पर योग्य उम्मीदवारों का अनदेखा करते हुए अपने भाई-भतीजा अथवा उन व्यक्तियों को नियुक्त किया जिन्होंने इसकी जेब गर्म की। आपस में लड़ाने-भिड़ाने का काम भी इसने खूब किया है। साम्प्रदायिक दंगे करवाकर असंख्य भारतीयों को मौत के घाट उतरवा दिया इसने। इसका असर हमारे नर्कलोक पर भी हुआ इन दंगों में इतनी आत्माएं शरीर मुक्त हुईं कि हमारे यहाँ स्थान की कमी हो गई। अब एक-एक नरक-कुण्ड में सैकड़ों आत्माओं को एक साथ ही दण्ड दिया जा रहा है।"

"इसने अपनी पत्नी को सिर्फ इसलिए मार डाला कि वह अपने ऊपर एक

मेम टाइप सौत को बर्दाश्त नही कर सकी। तिस पर भी इसका कमीनापन देखिए कि इसने अपने पाप पर परदा डालते हुए अपने इकलौते साले को हत्यारा बताकर, उसे फांसी पर चढ़वा दिया और उसकी सारी जायदाद हड़प ली। मैं कहां तक इसके पाप गिनाऊं, इसके सारे अपराध गिना देना आसान नही है।"

चित्रगुप्त की बात को बीच में ही रोकते हुए धर्मराज ने कहा—बस-बस और पाप गिनाने की आवश्यकता भी नही है।" फिर सभासदों की ओर उन्मुख होकर उन्होंने कहा—"आप लोगों ने इसके अपराध सुने हैं आप लोग शीघ्र ही निर्णय लें कि इसे क्या सजा दी जाय, और "

न जाने धर्मराज और क्या कहना चाहते थे कि नेता जी बोल उठे—"नही, नही, ये सभी आरोप गलत है, मैंने कोई अपराध नही किया। मैं यहां पर यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं, चूंकि मैं निरन्तर प्रगति करता रहा हूं इसलिये मेरे प्रतिद्वन्द्वी मुझसे जलते हैं, जरूर उन्होंने ही ये बेतुके आरोप मेरे विरुद्ध प्रस्तुत किये हैं।'

धर्मराज मुस्कराकर बोले—"नही भाई, यह तुम्हारा भ्रम है। तुम्हारा कोई प्रतिद्वन्द्वी यहां शिकायत करने नही आया। न हमें इसकी आवश्यकता ही पड़ती है। हम तो अपने साधनों से ही सब कुछ मालूम कर लेते हैं।"

"तब जरूर यह सी० आई० ए० की शरारत होगी। मैं सभी आरोपों से इन्कार करता हूं। मैंने कोई अपराध नही किया।"

"देखो भाई यह भारतीय अदालत नही है जहां वकीलों की अंट-संट दलीलों के आधार पर झूठ को सच और सच को झूठ मान लिया जाता है। इसलिये तुम चुप ही रहो।" फिर उन यमदूतों को पूरी तरह सतर्क रहने का इशारा करते हुये सभासदों की ओर देखकर धर्मराज ने कहा—"अब तक आप लोग निर्णय ले चुके होंगे, कृपया बताएं, आपने इस घृणित आत्मा के लिये क्या दण्ड निर्धारित किया है।'

उत्तर में एक-एक कर सभासदों ने बोलना शुरू किया—

"इसे रौरव नरक में डाल दिया जाये—"

"नही, कुम्भीपाक नरक मे रखा जाय—"

"नही-नही यह गलत होगा, इसके हर पाप के लिय अलग-अलग सजा दी जाय, जैस हत्या करने वाले का हाथ काट दिया जाये—"

इस तरह सभासदो म मतैक्य नही हो सका। दो-चार मिनट चुप्पी छायी रही। तब धमराज ने सभासदो मे से एक वयोवृद्ध सभासद से कहा—

'आदरणीय, आपने अपना मन्तव्य प्रकट नही किया।"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"भगवन, मेरा विचार सुनकर शायद आप लोग हसे, किन्तु मुझे इसस उपयुक्त कोई सजा इस नीच क लिये समझ नही आती। मेरे विचार मे इस किसी एकान्त कोठरी मे मुह पर पट्टी बाधकर डाल दिया जाए-वही इस भोजन व जल दिया जाय किन्तु इस बोलन का अवसर न दिया जाये।"

यह सुनते ही नेता जी चीख पडे—"यह घोर अ याय है, यह प्रजातत्र है। प्रजातत्र मे किसी का बोलने का अधिकार नही छीना जा सकता। इस प्रश्न को मैं राष्ट्रमण्डल मे उठाऊंगा। नही मैं चुप नही रह सकता। मैं—मैं तुम सबको देख लूगा। तुम लोग समझते क्या हो मुझ "

अब धमराज का भी पारा गम हो उठा—"अरे मूख न्याय क्या चिल्लाता है। यह भारतीय असेम्बली नही है, यह धमराज का न्याय भवन है। यहाँ तेरी बकवास सुनने की फुरसत किसी को नही है। अब यदि तुम दोबारा बोले तो तुम्ह जो भोजन-पानी की सुविधा दी जा रही है, वह भी नहीं दी जायेगी।"

यह सुनते ही नेता जी की सिटटी गुम हो गई। वे चुपचाप बैठे रह गय। इसी बीच सभी सभासदा ने विचार-विमश कर वृद्ध द्वारा सुझाई गई सजा का समथन कर दिया, और नेता जी के मुह पर पटटी बाधकर एक अलग-थलग कोठरी मे डाल दिया गया।

ooo

चमचा तेरे रूप अनेक

गुरुदेव अपना प्रवचन प्रारम्भ करने ही जा रहे थे कि एक शिष्य ने पूछ लिया— 'गुरुदेव ! आजकल चमचा और चमचेबाजी शब्द काफी प्रचलित हो रहे है । कृपया हमें बताइये यह चमचा क्या होता है ?"

गुरुदेव किंचित मुस्कराये । फिर हुक्के से एक लम्बा कश लेकर बोले— "अच्छा ठीक है ! आज के लिये निश्चित वक्तव्य कैंसिल । आज हम चमचों की ही चर्चा करेंगे ।" हुक्के से एक और लम्बी फूंक मारने के बाद गुरुदेव बोले, "मानव समाज कई जातियों और उपजातियों में बंटा है और इन जातियों-उपजातियों के चार प्रमुख वर्ग हैं । कोई ब्राह्मण है तो कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है तो कोई शूद्र । यह हुए जान-पहचान वर्ग । इनके अलावा एक और वर्ग होता है जिसके संबंध में अधिक लोग नहीं जानते । यह वर्ग है-चमचा का यानि मस्काजीवी वर्ग । इस वर्ग का व्यक्ति पहले चार वर्गों की, किसी भी जाति का हो सकता है । जाति, इस वर्ग में विशेष अहमियत नहीं रखती । इस वर्ग को भी प्रमुखतः चार खण्डों में बाँटा जा सकता है—उच्चवर्गीय चमचे, उच्च-मध्यमवर्गीय चमचे, मध्यम वर्गीय चमचे तथा निम्नवर्गीय चमचे ।"

'उच्च वर्गीय चमचे ऊँचे खानदान (पैसे के हिसाब से) के होते हैं । ये चमचे या तो उच्च स्तरीय नेता (मंत्री आदि) होते हैं अथवा बड़े व्यापारी और अधिकारी होते हैं । ये चमचे अपने से बड़े स्तर वाले नेता, जो सत्ता में हो, को सलामी देकर अपना स्थान सुरक्षित बनाते हैं तथा अपने भाई-भतीजों का जीवन भी सुधारते है । साथ ही साथ धन व यश लाभ भी अर्जित करते हैं । किन्तु कभी-कभी गोटी उल्टी बैठ जाने पर इस मस्केबाजी की भारी कीमत चुकानी पड़ती है और इन्हें दिन में तो क्या रात में भी तारे नजर नहीं आते । चारों तरफ अंधकार ही अंधकार नजर आता है ।

दूसरे अर्थात् उच्च मध्यम वर्गीय चमचे वे होते हैं जो कुर्सी दौड़ में आधी दूर तक तो पहुँच जाते हैं किन्तु बाकी बची हुई दूरी पार करना उनके अपने बस में नहीं होता। ऐसे लोग जिसके हाथ में कुर्सी प्रदान करना होता है उसे मस्का मारते हैं अथवा वे धनाढ्य जो लखपति होकर करोड़पति बनने का ख्वाब देखते हैं, परन्तु उनके रास्ते में छोटे कर्मचारी जबरन अपनी टाँगें अड़ाते हैं। उनकी टाँगें हटाने (अथवा काट देने) हेतु ये लखपति सत्ताधारी का अर्थात् समर्थ व्यक्ति को मस्का लगाकर प्रसन्न करते हैं और इस तरह सत्ताधारी द्वारा उनके रास्ते में यत्र तत्र अटकी हुई टाँगें हटा दी जाती हैं। रास्ता खुल जाता है।

क्षेत्रीय नेता तथा सी ग्रेड अफसर मध्यवर्गीय चमचे होते हैं। चूँकि इन लोगों के पास इतनी ताकत नहीं होती कि वे स्वयं किसी समस्या को हल कर सकें अपने भाई-भतीजों को नौकरी दिला सकें, अथवा व्यापार में लगा सकें, या व्यापार में लाभ के रास्ते खोल सकें, इसलिए ये लोग मस्के का डिब्बा लेकर, एम० एल० ए०, मंत्री अथवा बड़े अफसरों के बंगलों की ओर दौड़ते हैं। उन्हें भेंट पूजा देते हैं, दिलवाते हैं और इसी तरकीब द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं।

निम्नवर्गीय चमचा बेचारा निरीह प्राणी होता है। इसे पहले तीनों वर्गों का मस्का पालिश करनी पड़ती है। तथा उनके पास मस्के का स्टाक भी जमा करना पड़ता है ताकि हर चमचा अपने से ऊँचे चमचे का मस्का मार सके फिर भी उसका स्टाक समाप्त न हो। इसे मेहनत भी सबसे अधिक करनी पड़ती है। यदि उसके क्षेत्र में कोई नेता पधार रहा है तो उसके स्वागत का प्रबन्ध करना, सभा का आयोजन करना ताकि नेता की जीभ की खुजली मिट सके।

मसभदार अक्सर हमेशा दौरे पर रहते हैं। इसमें घर के खर्च में भी कटौती होती है, आमदनी भी बढ़ती है। साथ ही साथ चमचाई गौरव में भी वृद्धि होती है। इस दौरों के दौरान साहब के ठहरने की व्यवस्था करना, उनके आराम का ख्याल रखना, इन्हीं निम्नवर्गीय चमचों का उत्तरदायित्व होता है। इन्हें अक्सर जलील भी होना पड़ता है। व्यवस्था में छोटी सी भी कमी रह जाने पर अधिकारियों में डाँट खानी पड़ती है तो कभी विरोधी दल का अनर्गल प्रचार

सिरदर्द बन जाता है। और इस तरह बदनामी मोल लेते हुए भी बचारे के हाथ बड़ो की जूठन के अलावा कुछ भी नही लगता। किन्तु यह इतना सतोषी जीव होता है कि वह इसी जूठन म सम्पूर्ण तृप्ति महसूस कर लेता है।

एक अनुमान के अनुसार आज प्रति सौ व्यक्तियो मे स लगभग अस्सी व्यक्ति चमचागिरी करते हैं। इस तरह यह युग चमचागिरी का युग हुआ किन्तु बचारो को अपना कार्य सम्पादित करने के लिये अथक परिश्रम करना पड़ता है जो कि सरासर अन्याय है उन पर।"

एक शिष्य बीच म ही बोल उठा —"गुरुदेव! इस तरह चमचागिरी तो बहुत बड़ी कला हुई। उसके विकास के लिये क्या कुछ किया नही जा सकता?"

गुरुदेव इस प्रश्न से प्रसन्न हुए। फिर सामन रखे हुक्के मे दो तगड़ी फूक मारकर बोले—"शाबास! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। निश्चित ही इस कला का समुचित विकास होना चाहिए। इस हेतु निम्न बातो पर ध्यान दिया जाना चाहिये—

1—नौसिखिये चमचो मे से प्रतिभाशाली चमचो को उच्चस्तरीय चमचागिरी सीखने हेतु छात्रवृत्ति मिलनी चाहिये।

2—स्कूलो म चमचागिरी की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये।

3—नौकरी के लिये चमचागिरी मे निपुणता आवश्यक योग्यता घोषित होनी चाहिये तथा नौकरी उस उम्मीदवार को ही मिलनी चाहिये जिसके पास सबसे अधिक सिफारिशी पत्र हो।

4—जिन नागरिको को चमचागिरी न आती हो उनके सपूर्ण नागरिक अधिकार छीन लिये जाना चाहिये।

5—ऐसे कर्मचारियो को तत्काल नौकरी स हटा दिया जाना चाहिये जिन्हे चमचागिरी का ज्ञान न हो अथवा जो चमचागिरी और चमचो की निंदा करते हो।

6—निपुण चमचो का यात्रा व्यय तथा अन्य आवश्यक व्यय सबधित विभाग द्वारा वहन किया जाना चाहिये।

7—अन्तिम व सबसे महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि सरकार को चमचागिरी पर रिसर्च हेतु एक अनुसंधान आयोग गठित करना चाहिये जो राष्ट्र के सभी चमचों की वर्गानुसार सूची बनाकर उनसे सम्पर्क करे। उनकी समस्याओं का अध्ययन करें और निराकरण हेतु सुझाव दें।

उपर्युक्त सुझावों पर शीघ्र ही ध्यान देकर उचित कदम उठाये जाने चाहिये तभी इस महत्वपूर्ण कला का विकास हो सकेगा।" अब मैं अपना भाषण यहीं समाप्त करता हूँ। सब मिलकर बोलो—'चमचागिरी जिन्दाबाद' और सभी शिष्यों ने चमचागिरी जिन्दाबाद का नारा लगाते हुए प्रण किया कि वे चमचागिरी के उत्थान हेतु जी-जान से जुट जायेंगे।

०००

न्याय

"दाऊ जी ! आजकल हिरवा चमार के लड़के के हौसले बहुत बढ़ते जा रहे हैं। दो चार अंग्रेजी अक्षर क्या पढ़ गया है अपने आपको लाट साहब ही समझने लगा है।" हीरा ठाकुर कह रहे थे।

"अच्छा ..."

"जी हाँ ! और जानते हैं आजकल यह बड़े घर की बहू-बेटियों की राह चलना छेड़ता भी है।"

"क्या ?" पास ही बैठे लक्ष्मी पंडित चौंक पड़े।

"हाँ जी, कल ही की तो बात है। कल शाम मेरी बेटी मैदान की ओर जा रही थी तब इसने, उसे राह में रोक लिया।"

"अरे ! तो ऐसा कहो न, चींटी के पर निकल आए हैं।"

दाऊजी की आवाज गूंज उठी "अरे ओ भालू ! जा, बुला तो ला झींगुर के बच्चे को।"

दाऊजी का नौकर भालू हिरवा चमार और उसके बेटे प्रकाश को पकड़कर ले आता है। प्रकाश को देखते ही दाऊजी का पारा चढ़ जाता है।

"क्यों उल्लू के पठ्ठे स्कूल में पढ़ने क्या जाने लगा है अदब कायदा ही भूल गया ?"

"जी ... जी ... मैंने तो कुछ भी नहीं किया।"

हिरवा दाऊजी के तेवर देखते ही घबरा गया था—"हजूर ! लड़के से कुछ कुसूर हो गया क्या ?"

"कुसूर ? अरे इस नालायक ने कल हीरा ठाकुर की बेटी को छेड़ा है ..."

"न, नहीं, वह तो ... मैंने यह बताया था कि उसे रास्ते पर न जाये, उधर बहुत काटे हैं।"

'अच्छा अच्छा, तो तू उसे रास्ता बता रहा था! हूँह! ओए भालू उठ और लगा तो पांच जूते इस हरामजादे को! और हिरवा तू भी कान खोलकर सुन ले। अगर आगे इसकी कोई शिकायत आयी तो "

भालू प्रकाश को जूते से पीटता है। व दोनो बाप-बेटा सिर झुकाए उठकर चले जाते है। तभी किसना चमार रोता-बिसूरता आकर दाऊजी सहित सभी बडो को 'पालागी' कहकर एक कोने म खडा हो जाता है। तब दाऊजी उसकी तरफ देखकर पूछते है "क्या बात है रे किसना?"

"मालिक जान की अमान पाऊँ तो कुछ कहूँ "

"अरे कहो भाई, कहो, यहाँ तो न्याय होता है न्याय। यहा किस बात का डर?"

'हुजूर कल शाम को मेरी बेटी शकुनिया कडवी उठाने गयी थी "

'अरे तो चमार की लडकी यही तो करती " लक्ष्मी पडित कहते हुए ठठाकर हस पडे।

"जी हुजूर, सो तो है। मगर वहा वहाँ " कहते-कहते लक्ष्मी पडित की ओर देखकर रुक जाता है। दाऊजी उसे फिर ढाढस बधाते है 'हा हाँ क्या हुआ वहा?"

"मालिक जी कहते जबान कटती है। वहा पर छोटे पडित श्यामलाल जी ने उसे पकड लिया और उसकी इज्जत लूट ली "

'क्या कहा, तुझे शरम नही आती ऐसा कहते, श्याम ऐसा लडका नही है।" लक्ष्मी पडित अपने बेटे की करनी सुनकर गरज पडे।

'मगर मालिक उन्हे ऐसा करते सन्जा धोबी ने भी देखा है।'

'अच्छा अच्छा " दाऊजी ने उदासीन स्वर में पूछा 'अब तू क्या चाहता है?"

मालिक लडकी खराब हो गई। अब बिरादरी म कोई भी उसे ब्याहने को तैयार नही होगा।"

"लेकिन जब तक ▮ नही बतायगा, किसी को मालूम कैसे होगा?"

'मगर मालिक "

"अगर-मगर कुछ नहीं। पडित जी ! श्याम भी लडका ही है। कुछ चूक हो गई होगी। आप इसको लडकी के व्याह खर्च के लिए कुछ रकम दे दीजिये। और किसना तू खुद इस मामले मे चुप रहना और अपनी बेटी और सब्आ को भी समझा देना। इस बात का किसी को पता नहीं चलना चाहिये वरना "

इस समय दाऊजी का स्वर किसी दरिद्र का सा था।

लक्ष्मी पंडित सदरी की जेब से कुछ नोट निकालकर किसना को देते हैं। वह चुपचाप सिर झुकाये नोट लेकर बाहर चला जाता है। तभी दाऊजी का अस्फुट-सा स्वर सुनायी देता है—"हुँह इज्जत ! आजकल चमारों के पास भी इज्जत होने लगी है।

०००

जागृति आयी आयी नहीं आयी

एकाएक ही हमारे शहर मे जागृति आ गई। कहाँ से आई? कैसे आई? यह मत पूछिए। बस! यह जान लीजिये, कि जागृति आ गई और जब आ ही गई तो हमारे शहरवासियो ने उसका जोर-शोर के साथ स्वागत किया। इस स्वागत के दौर दौरे मे कई बड़े काम हुये। जो काम नही हो पाये उनके लिये अनगिनत समितियां गठित हो गइ। यह बात और है कि इन सभी समितियो के अध्यक्ष हमारे शहर के एकमात्र नेता जी ही थे। बस कमी तो यही कि इन समितियो मे महिला वर्ग का प्रतिनिधित्व लगभग नही था। लेकिन नही नेता जी की इकलौती पत्नी श्रीमती लोटन बाई हर समिति की सदस्या थी। उन्हे यह कैसे गँवारा हो सकता था कि उनके रहते इस आधुनिक युग म खासतौर स जागृति के आ जाने के बावजूद महिला वर्ग को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त न हो। उन्होंने हर समिति की बैठक मे उनकी कौम के प्रति हुए इस अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाई। लोटन बाई का समय रंग लाया और उनका प्रस्ताव मान लिया गया। उनका प्रस्ताव था कि चूँकि महिलाओ को इन समितियो मे उचित प्रतिनिधित्व नही मिला इसलिए अलग से महिला मडल का गठन होना चाहिए। हा, तो उनका यह प्रस्ताव मान लिया गया और सभी समितिया ने एक स्वर स महिला मडल के गठन की स्वीकृति दे दी। स्वीकृति मिलते ही लोटन बाई, महिला मडल के गठन हेतु जी-जान से जुट गइ। अब समस्या थी महिला मडल के लिये सदस्य कहा से जुटाये जाये क्योंकि जो जागृति आई थी न, वह केवल पुरुषो तक ही पहुँच सकी थी। हमारे शहर की महिलाये, यकीन मानिय जनाब, अब भी वाजिद अली शाह के जमाने म जी रही हैं। अर्थात् एक तो घर से बाहर कदम निकालने को ही तैयार नही और अगर जरूरी हो ही गया तो आठ गज की साडी का कम से कम एक गज टुकडा घूँघट क रूप मे चेहरे के आगे हाथी की सूड बनकर लटक जायगा। ऊपर स एक रंगीन-चमकदार रेशमी चादर ओढी जायेगी। तब कही श्रीमती जी घर से बाहर कदम रखेंगी। अब

भले ही घूँघट की वजह स राह दिखाई न द और पाँच मिनट का रास्ता पाच घटे मे ही क्यो न तय हा सके, मजाल है कि उँगली भी कपडो स बाहर झाँक ले।

लेकिन लोटन बाई भी अपने नाम की एक ही थी। उन्होंने अपना प्रयास जारी रखा और एक दिन ऐसा भी आया कि महिला मडल की सदस्यता स्वीकार करने को तैयार दस महिलाये उन्होंने जुटा ही ली। य महिलाये कौन-कौन और कैसी थी, यदि इनका वणन किया तो न केवल पृष्ठ रग जायेंगे बल्कि हमारा अस्तित्व भी खतर म पड जायेगा। क्योंकि अपने राम शुद्ध हरिशचन्द्र के अवतार है और हमारी कलम हमारी सौ फीसदी आज्ञाकारिणी। परिणाम स्वरूप वह सत्य बात ही लिखेगी और आप जानत ही हैं कि सत्य हमेशा कडुवा होता है। तो एक नही, दस-दस महिलाये जब हमे घेरेंगी तो हमारा क्या बनगा इसका अदाजा शादीशुदा लोग आसानी से कर सकते है। इसलिय हम उनका परिचय देना स्थगित कर महिला मडल के गठन की कायवाही का विवरण ही लिखने हैं।

हा, तो लोटन बाई न दस महिलाये जुटाकर, उनकी लिस्ट नता जी को थमा कर उनमे महिला मडल का स्वरूप निर्धारित करन हेतु विस्तृत चर्चा करी। चचा के दौरान यह तय हुआ कि महिला मडल के गठन की विधिवत् घोषणा पूर्णिमा को कर दी जाये।

पूर्णिमा आई और महिला मडल की कायकारिणी का चुनाव सम्पन्न हुआ। श्रीमती लोटन बाइ अध्यक्ष, भ्रूतीखबासन सचिव कमली की दादी उपाध्यक्ष, लल्ली की नानी कोषाध्यक्ष और अन्य पाँच महिलायें कायकारिणी सदस्यायें चुनी गई। चुनाव के दौरान, जैसा अक्सर होता है, काफी बवेला मच गया। शेष दो महिलाओ का कहना था कि वे किससे कम हैं जो उन्हें कोई पद नहीं सौंपा गया किन्तु लोटन बाई न सूझबूझ से काम लेकर उन्हें चुप करा दिया। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण काय तो अभी बाकी ही था। और वह था उद्घाटन। आप तो जानते ही हैं कि जिस तरह पुरान जमान म हर काय के पहल देवी-देवताओ का पूजन आवश्यक माना जाता था उसी तरह आज हर आयोजन से पहल उसका उद्घाटन किसी नता स कराना आवश्यक होता है।

सोचने की बात थी कि उद्घाटन किससे कराया जाय। क्योंकि हमारा शहर (सही बात बतला ही दे, हमारा शहर वास्तव में एक छोटा कस्बा भी नहीं है, लेकिन लोग हमे दहाती न समझ ले, इसलिये हम उसे शहर ही कहते हैं) ऐसी जगह स्थित है जहाँ कोई भी मन्त्री आने की तो बात ही छोड़िये, झाँकने को भी तैयार नहीं। इसलिये काफी सोच विचार कर तय किया गया कि महिला मंडल का उद्घाटन क्षेत्र के विधायक महोदय के कर-कमलों से ही सम्पन्न हो। यह शुभकार्य शीघ्र पूरा होना भी जरूरी था क्योंकि महिला मंडल की पदाधिकारिणियाँ काफी कमठ थी और उनके शरीर कुछ न कुछ कर डालने को कसमसा रहे थे। इसलिये उद्घाटन कार्य सम्पन्न करने हेतु पंचमी की तिथि निश्चित हो गई।

विधायक महोदय से सम्पर्क किये जाने पर अपने उद्घाटन प्रेम का परिचय देते हुये उन्होंने इस शुभ कार्य में सहयोग देने हेतु स्वीकृति दे दी।

पंचमी आई और शहर के प्रमुख मैदान में, जो कि नेता जी के घर के सामने ही है, शानदार मंच तैयार हो गया। साज सज्जा तो ऐसी की गई कि मैदान, महिला मंडल के उद्घाटन स्थल की बजाए किसी राजकुमारी के स्वयंवर स्थल जैसा दिखाई देने लगा।

परम्परानुसार, नियत समय से एक घंटा लेट पधारे थे, विधायक महोदय। पंडाल में कदम रखते ही विधायक महोदय की जय जयकार से आसमान गूंज उठा। उनके आसन-ग्रहण करते ही कार्यक्रम संचालक महोदय, जो स्वयं नेता जी ही थे, ने कार्यवाही प्रारम्भ की। सर्वप्रथम विधायक महोदय का पुष्पहार से स्वागत किया जाना था, जिसके लिये महिला मंडल की कोई भी पदाधिकारिणी अंत तक तैयार नहीं हुई। मजबूरन नेता जी को ही वह पुष्पहार विधायक महोदय को पहनाना पड़ा। नेता जी के स्वागत भाषण के पश्चात् विधायक महोदय ने छोटा सा वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा—"निश्चित ही हमारा नगर (शहर अब नगर हो गया) बेहद भाग्यशाली है, जो जागृति सबसे पहले यहीं पधारी। हमारे नगर में भी उसका भरपूर स्वागत किया गया। हमारे नगर में महिला मंडल का गठन एक ऐतिहासिक घटना है जिसका सम्पूर्ण श्रेय नेता जी तथा श्रीमती लोटन बाई को जाता है, जिनके अथक परिश्रम से ही यह संभव हो सका। मैं इस पुनीत

अवसर पर सामने बधी हुई पगड़ी (चूंकि महिला मंडल का उद्घाटन था इसलिये फीता काटा जाना महिलाओं के अपमान की बात समझकर फीते का स्थान पगड़ी ने ले लिया था) काटकर महिला मंडल का उद्घाटन करूं", इससे पहले मैं चाहूँगा कि मंडल की पदाधिकारिणियों से मुझे परिचित करा दिया जाय।"

सर्वप्रथम लोटन बाई आई और उन्होंने हाथ जोड़कर अपना परिचय दिया। इसके बाद बारी थी सचिव अर्थात् फुन्नी सबासन की जो आज काफी सज धज कर आई थी। जवान फुन्नी कुछ सकुचाती, कुछ मुस्काती, स्टेज पर आई और अपना नाम बताते हुये, किसी अपटूडेट महिला की ही तरह उसने अपना हाथ विधायक महोदय की ओर बढ़ा दिया। अगले ही क्षण उसकी नर्म नाजुक हथेली गदगद विधायक महोदय की हथेली में थी। बस यहीं गड़बड़ हो गई। फुन्नी सबासन के पति महोदय श्री बजरंगी लाल जो कि दर्शकों की अगली पंक्ति में ही विराजमान थे, उन्हें यह गवारा न हुआ कि उनकी जोरू की कलाई कोई और थाम ले। वे एक बड़े तेल पिलाये लट्ठ के साथ हनुमान स्टाइल में स्टेज पर अवतरित हो गये और— "साला बड़ा आया विधायक का बच्चा, पराई जोरू की कलाई पकड़ते शर्म नहीं आयी।" कहते हुये एक लट्ठ विधायक महोदय के जड़ ही तो दिया। इधर लट्ठ पड़ते ही विधायक महोदय मंच पर अंटागा-फील हुए उधर पंडाल में खलबली मची। दो मिनट में ही यह हालत हो गई कि पंडाल में एक चिड़िया भी बाकी न बची। फुन्नी सबासन और उसके पति महोदय भी मंच से गायब थे। बस बाकी थे तो नेता जी, लोटन बाई और बेहोश पड़े विधायक महोदय, जिन्हें होश में लाने का तरीका लोटन बाई की समझ में नहीं आ रहा था। तब तक विधायक महोदय के चेले-चपाटे जो उनके साथ ही आये हुए थे लेकिन इस समय गाड़ी में पसरे हुए थे, भी स्टेज पर पहुँचकर विधायक महोदय के उपचार में लग गये। वैसे कोई खास चोट उन्हें नहीं आई थी। इस लिये जल्दी ही होश में आ गये। लेकिन अफसोस हमारे नगर के नये-नये पनपे महिला मण्डल का उद्घाटन होते-होते रह गया और जागृति आकर भी लौट गई। पता नहीं दोबारा फिर कब आयगी वह हमारे नगर में।

○ ○ ○

नादा से दोस्ती

बहुत पहले एक फिल्म देखी थी। फिल्म का नाम तो अब याद नहीं, किन्तु फिल्म के एक गीत का मुखडा आज भी याद है। गीत का मुखडा इस प्रकार है, "नादा की दोस्ती, जी की जलन, जाने न बालमा, प्रीत की अगन।" फिल्म की नायिका को नायक की नादानी से शिकायत थी, जिसे वह गीत गाते हुये चटखारे ले-लेकर बयान कर रही थी। यह देखकर हमने समझ लिया कि न तो बालमा नादान था और न ही नायिका को उससे कोई गंभीर शिकायत थी। बस निर्माता को अपनी फिल्म बॉक्स आफिस पर हिट करनी थी। सो, दूसरे फिल्मी टोटकों की तरह इस गीत को भी टोटके की तरह इस्तमाल किया गया था। बचपन में हमने किसी किताब में एक किस्सा पढा था। किस्से में एक राजा था। उसके पास एक पालतू बन्दर था। बन्दर राजा को बहुत प्रिय था क्योंकि वह हमेशा राजा के पास ही रहता था और उसके प्रत्येक काम में मदद करता था।

एक बार राजा शिकार खेलने जंगल में गया। उसके साथ केवल उसका यह प्यारा बन्दर ही था। काफी भटकने के बाद भी शिकार तो न मिला किन्तु राजा बहुत थक गया। कुछ देर आराम करने के इरादे से वह एक गुफा में जा लेटा और बन्दर उसे पखा झलने लगा। राजा थका तो था ही, सो लेटते ही सो गया।

पखा झलते-झलते बन्दर ने देखा कि एक पुष्ट मक्खी राजा की नाक पर आ बैठी है। भला बन्दर यह कैसे सहन करता। उसने पंखे की मदद से मक्खी को उडा दिया, लेकिन मक्खी किसी प्रकार की ढीठ थी, सो बार-बार राजा की नाक पर जा बैठती। बन्दर उसे बार-बार उडाता। मक्खी फिर भी न मानती।

फलस्वरूप बन्दर अपना धैर्य खो बैठा। उसने गुफा के एक कोने में टिकी राजा की तलवार उठा ली और सावधान होकर बैठ गया।

मक्खी भी अपने नाम की एक ही थी। शायद उसे बन्दर को चिढ़ाने में मजा आ रहा था। सो थोड़ी ही देर बाद, वह फिर से राजा की नाक पर जा बैठी। बन्दर तो पहले से ही तैयार बैठा था सो मक्खी के नाक पर बैठते ही उसने पूरी ताकत लगाकर तलवार का सीधा वार, मक्खी पर कर दिया। भला मक्खी का क्या बिगड़ना था। वह तो उड़ती हुई यह जा, वह जा, मगर राजा बेचारा बन्दर की दोस्ती की कृपा से नींद में ही भगवान को प्यारा हो गया।

हमारे विचार में इस किस्से में बहुत गड़बड़ है। पहली गड़बड़ तो यह है कि भला कोई राजा, बन्दर को दोस्त क्यों बनाता। और अगर बना ही लिया था तो केवल बन्दर को साथ लेकर शिकार खेलने क्यों जाता। कुल मिलाकर यह किस्सा किसी नेता के आश्वासनों की तरह एकदम अविश्वसनीय लगता है।

अब तक हमारी यह धारणा बन चुकी थी कि नादान की दोस्ती को लेकर लोग जो किस्से चटखारे ले-लेकर सुनाते हैं वे सब मनगढ़ंत हैं। क्योंकि किसी समझदार की किसी नादान से दोस्ती हो ही नहीं सकती। इसी बीच एक छोटी सी घटना कुछ इस तरह घटित हुई कि हमारी यह धारणा बार-बार डगमगा जाने वाली मुख्य मन्त्री की कुर्सी की तरह डगमगा उठी।

हमारे गाव में एक सब्जी वाला सब्जी बेचने आया करता था। वह अनाज के बदले सब्जी बेचता था। एक दिन हमारे एक मित्र ने उससे तीन पाव सब्जी खरीदकर उससे दाम पूछे तो उसने कहा—"भैया जो भी बनता हो दे दो।"

मित्र ने हसते हुये कहा—"अगर हम कम पैसे दें तो?" यह सुनकर वह भोले से मुखड़े वाला तुक मिलाता हुआ बड़ी मासूमियत के साथ बोला—"अगर हम बिगर पड़ें तो—?"

यह सुनकर पहले तो मित्र की समझ में कुछ न आया किन्तु समझ में आते ही कुछ मुस्कुराते हुये, कुछ झेंपते हुये, उन्होंने, उसे सही-सही पैसे चुका दिये। दरअसल उस सब्जी वाले ने हिन्दी फिल्मों के संवादों की तरह द्विअर्थी संवाद

धर पटका था। बुन्देली मे "बिगर पढे" के दो सवमान्य अथ होत है। एक तो बिना पढा लिखा अथात् निरक्षर और दूसरा बिगड खडा होना अर्थात् क्रोधित हो जाना।

हमारी किंचित डगमगाती इस धारणाओ को कुछ समय बाद बाकायदा हाट अटेक, उस समय हुआ, जब हमारे एक शिक्षक मित्र कवि बनन पर उतारू हो गये। हमने उन्ह लाख समझाया, मगर बात थी कि उनकी समझ मे आई ही नही। वे दिन-रात शब्दो के साथ उठा-पटक करत और उनका कचूमर निकालकर मित्र मडली के मत्थे मडत। मित्र-मंडली, हमारा मित्र होने के नाते, उन्ह कुछ न कहती जिससे उनका यह मच लाइलाज बीमारी की तरह बढता ही गया। इधर यह चिन्ता हम घुन की तरह खान लगी कि पता नही इनका काव्य-प्रेम कब क्या गुल खिला दे। और आखिर गुल खिल ही गया। हुआ यह कि स्थानीय साहित्यिक सस्था न एक कवि सम्मेलन का आयोजन कर डाला। कवि सम्मेलन मे ख्याति प्राप्त कवियो के साथ-साथ स्थानीय प्रतिभाओ को भी अवसर प्रदान करन की योजना बनाई गई। चूकि मित्र महोदय भी सस्था के सदस्य थे सो यह योजना स्वीकृत होते ही, वे कवि सम्मेलन मे काव्य पाठ हेतु अड गय। उनकी जिद इतनी विकट थी कि हमारे साथ-साथ सस्था के अन्य पदाधिकारी भी हथियार डालने के लिए मजबूर हो गए।

यथासमय उनके काव्य-पाठ की बारी आई तो हमारा दिल धडकन लगा। अपना नाम पुकारा जाने ही वे उछलकर माइक के पास जा पहुँचे। उनके माइक थामते ही श्रोताओ न जाने किस भावना के वशीभूत होकर तालियो स पडाल गूजा दिया। तालियो की गडगडाहट का मित्र पर यह असर हुआ कि, वे बुरी तरह गडबडा गए और हाथ म थमी डायरी हाथ से छिटककर मच पर जा गिरी। डायरी ने मच पर गिरते ही ढेर सारे पुर्जे इधर-उधर उछाल दिए। बुरी तरह हडबडाए मित्र ने जैसे-तैस उन्ह बटोरा। फिर यथासभव संयत होकर, बिना देर किए धाराप्रवाह काव्यपाठ करने लगे। इसमे कोई सदह नही कि वे श्रृगार रस से सराबार कविताये सुना रहे थ लेकिन अब इस क्या कहा जाए कि उनके हाव-भाव और काव्य पाठ की शैली के कारण, श्रोताओ

मा इसी से मारे बुरा हाल था। और हम—हम तो बाकायदा अपना माथा पकड़े मच के एक कोने में दुबकने की कोशिश कर रहे थे। उधर दूरस्थ नगरों से पधारे कवि गणों की तीखी निगाह हमारी देह के रोम-रोम को छेद रही थीं। इस हार्ट अटेक के बाद हमारी यह मासूम धारणा बाकायदा पक्षाघात की शिकार हो गई।

आप यह तो जानते ही होंगे कि हमारे देश की नारियां को देवर बनाने का बेहद शौक रहता है। हमारी गृहस्थी की नियामक अर्थात् हमारी श्रीमती जी भी इसकी अपवाद नहीं हैं। उनके देवरों की संख्या इतनी अधिक है कि उन असंख्य देवरों में से एक देवर महाराज, जिनका नाम यहाँ तक मुझे याद आता है, चतुर्भुज था। लोग-बाग उन्हें स्नेह के साथ चतरू कहकर पुकारा करते थे। उन दिनों चतरू मियाँ हमारी श्रीमती जी के सर्वाधिक चहेते देवर थे। कारण? शायद यही था कि वे, अक्सर हमारे घर पर ही डटे रहते और श्रीमती जी की नारी सुलभ बातें खूब रस ले लेकर सुनते रहते। कभी कभार, लगभग उसी तासीर वाले किस्से, खुद भी सुनाया करते। इस कारण श्रीमती जी हमेशा प्रसन्न रहतीं। उनके प्रसन्न रहने से हम भी प्रसन्न रहते क्योंकि इस प्रकार हम उनके ईश्वर प्रदत्त और समाज से मान्यता प्राप्त घातक शस्त्रास्त्र अर्थात् तानों-उलाहनों से बचे रहते। किन्तु कुछ ही अरसे बाद हमारी यह प्रसन्नता काफूर होती नज़र आई।

बात यह हुई कि चतरू मियाँ की शादी तय हो गई। इस बीच वे अपनी भावी दुल्हन को देख भी आये थे। सो बातों के लिये उनके पास भरपूर मसाला था और श्रीमती जी के रूप में, पूरी दिलचस्पी के साथ, उनकी बातें सुनने वाला श्रोता भी उन्हें सहज उपलब्ध था। सो वे, इस अवसर का भरपूर लाभ उठाते और अपनी भावी दुल्हन के रूप-सौन्दर्य के वर्णन में शृंगार-रस-सम्राट कविवर बिहारी को भी पीछे छोड़ते हुये, सुबह आठ बजे से लेकर रात के बारह बजे के बीच कम से कम बारह घंटे हमारे घर पर ही गुजारा करते।

हम, हमारे घर में, उनकी लगातार उपस्थिति के कारण तो त्रस्त से रहते ही थे साथ ही हमारी समझ में नहीं आता था कि हमारी भी शादी हुई थी और हमारी श्रीमती जी भी, भगवान झूठ न बुलवाये, उन दिनों साक्षात रति

प्रतीत होती थी और, परिवार नियोजन वाले माफ करें, पांच-पांच बच्चे पैदा करने के बाद भी जिधर से गुजर जाती है, राम कसम बिजलियां सी गिरती जाती हैं। लेकिन इस का दीवानापन तो हम पर कभी नहीं छाया। राम-राम कर उनकी शादी की तारीख आई। शादी हुई। दुल्हन घर आई तो हमारी जान में जान आई। क्योंकि अब उनका अधिकांश समय, अपने घर में, दुल्हन के इर्द-गिर्द ही बीतने लगा। लेकिन ऊपर वाला भी कम खुराफाती नहीं है। उससे हमारा यह सुख-चैन देखा नहीं गया, और चार पांच दिन बाद ही चतरू मियां की दुल्हन के मां-बाप ने उसे वापस मायके बुला लिया। दुल्हन का मायके जाना था कि चतरू मियां ने मजनू की ऐसी-तैसी करते हुये, थोक में ठंडी आह भरना शुरू कर दिया। आलम यह कि पूरी बस्ती, आइसक्रीम की तरह जम जाने का अंदेशा हो चला। किस्मत के मारे हमने उन्हें सांत्वना दी तो उनकी ठंडी आह भरना तो बंद हो गया लेकिन हमारी शामत आ गई।

उन दिनों, उनके लिये रात और दिन में कोई अंतर न था। उन्हें जब भी विरह सताता सीधे हमारे घर चले आते। रात आधी से भी अधिक गुजर जाती, हम उबासियों पर उबासियां लेते हुये मुंह फाड़ते रहते, फिर भी वे अपनी विरह व्यथा की रामायण चालू ही रखते।

पक्षाघात का शिकार हुई हमारी धारणा मोक्ष प्राप्त कर चुकी है और हमने यह मान लिया है कि भले ही सामान्य स्थिति में किसी नादान से किसी समझ-दार की दोस्ती न हो सकती हो किन्तु नादान की दोस्ती, समझदार के गले तो पड़ ही सकती है।

इस क्रम में हमें अपने एक पत्रकार मित्र की आप बीती याद आ रही है, जिनकी सारी खुदाई अर्थात् साले साहब का नाम है स्वतन्त्र कुमार। स्वतन्त्र कुमार जी चूंकि, अंग्रेजों के भारत छोड़ते ही धरा पर अवतरित हुये थे, सो मां बाप ने उन्हें, यह नाम दिया था। स्वतन्त्र कुमार जी यथा नाम तथा गुण अर्थात् हर मामले में स्वतन्त्र थे। यहां तक कि उनके शरीर का प्रत्येक कलपुर्जा अपनी मर्जी मुताबिक काम करने के लिये स्वतंत्र था। फिर भी वे, जैसे-तैसे मैट्रिक पास कर ही गये। और दैववशात् मास्टर बन गये। उनके मास्टर बनने

के कुछ ही वर्ष बाद, देश मे जनगणना हुई तो अन्य मास्टरो की तरह, उनको भी एक गाव की जनगणना करने का आदेश प्राप्त हुआ जिसे, उन्होंने प्यार के साथ रद्दी की टोकरी मे डाल दिया। कुछ समय बाद जब, उन्हे उनके मास्टर मित्रो ने टोका तो भाई जी फरमाने लगे—"अरे भाई, इसमे करना ही क्या है, समय आने पर कुछ आकडे भर कर फार्म जमा करा दूँगा।" बेचारे मित्रो ने उन्हे समझाने की काफी कोशिश की। किन्तु भाई जी के लिए मित्रो की समझाने की बात उस बीन सी साबित हुई, जिसे ठीक अपनी नाक के पास बजते हुये देख-सुनकर भी भैंस, अपने स्थान पर ध्यान-मग्न बैरागी सी खडी रहती है। जनगणना मे सम्बन्धित प्रपत्र, स्थानीय प्रशासन को सौपने की अन्तिम तिथि से सात दिन पहले, उन्हे लिखित चेतावनी मिली, जिसे पढने का भी कष्ट उन्होंने नही उठाया। जब अन्तिम तिथि की सुबह, स्थानीय प्रशासन के हरकारे प्रशासन का पत्र लेकर आये तो सयोगवश, उस पत्र को स्वतन्त्र कुमार जी की धर्मपत्नी ने प्राप्त किया और खोलकर पढ लिया। पत्र पढते ही वे बद-हवास हो उठीं। बात ही कुछ ऐसी थी। पत्र मे प्रशासन ने अन्तिम चेतावनी देते हुये लिखा था कि स्वतन्त्र कुमार जी को आवटित ग्राम की जनगणना सम्बन्धी प्रपत्र उसी तिथि की रात्रि के बारह बजे तक प्रशासन को न सौंप जाने की स्थिति मे उन्हें पदमुक्त कर दिया जायेगा। परिणाम की भयकरता और भविष्य की बदहवाली की चिन्ता से ग्रस्त स्वतन्त्र कुमार जी की पत्नी, तत्काल अपनी ननद जी की शरण मे जा गिडगिडाइ। सारी बात सुनकर पहले तो वे भी घबरा उठीं। फिर स्वयं को सयत कर, उन्होने अपने पति महोदय के नाम वारन्ट जारी करते हुये नौकर को उन्हे, जहाँ हो जैसी हालत मे हों, बुलाकर लाने हेतु भेज दिया।

पति महोदय के आते ही उन्होंने आदेश दनदना दिया—"जैसे भी हो भैया का यह काम आज ही हो जाना चाहिये।"

सुनकर बेचारे, बुरी तरह हडबडा गये और, हकलाते हुये बोले—"म-म मगर इतने कम समय में कैसे हो सकता है।"

"यह तुम जानो।"

पहले तो उन्होंने उसी जोश मे कह दिया। फिर अनायास ही अंतिम और सर्वाधिक घातक अस्त्र का प्रयोग करते हुये मिनमिनायी—"मेरे भाई-भावज की जान पर बनी है और तुम तुम मेरी बात इस तरह टाल रहे हो।" फिर एकदम गिरगिट की तरह रंग बदलते हुये पुकार उठी—"हूँह! बड़े पत्रकार बनते हो। मगर इत्ता-सा काम भी नही करवा सकते।" इतनी नौटंकी के बाद, वे तो रसोई में जा बैठी। इधर पत्नी के आंसुओं और तान से घायल पत्रकार बंधु ने अपने परिचितों के फोन खड़खड़ाना शुरू कर दिया। अनेक फोन खड़खड़ान और पचास तरह की मगजमारी के बाद, जैसे-तैसे एक जीप का जुगाड़ हो ही गया। जीप का जुगाड़ होते ही उन्होंने स्वतंत्र कुमार जी को सम्बन्धित गांव जाकर वहां के सरपंच मे मिल कर काम पूरा कर लाने हेतु कहा तो वे बाकायदा बुक्का फाड़कर रोने लगे। फिर रोते-रोते ही बोले—"नही, मैं वहां नही जाऊंगा।"

बहिन ने पूछा—"क्या, क्या नही जाओगे?"

"वहां जाऊँगा तो गांव वाले मुझे मारेंगे।"

"क्यो मारेंगे?"

"मुझे आज से एक माह पहले ही वहां जाकर गांव वालो की गिनती करना था और मैं आज तक वहां नही गया। अब जाऊंगा तो क्या वे लोग मुझे छोड़ देंगे?" उनके जीजा जी अर्थात् पत्रकार बंधु ने उन्हें समझाया—"नहीं भाई तुम व्यर्थ ही डर रहे हो। तुम्हें कोई कुछ नही कहेगा। मैंने वहां के सरपंच को राजी कर लिया है। वह सभी काम पूरे करवा देगा। बस तुम वहां जाकर वे फार्म ले आना और अपने हस्ताक्षर करके जमा करा देना।"

"नही मैं अकेला नहीं जाऊँगा। आप मेरे साथ चलिये।"

"क्या, मैं वहां जाकर क्या करूंगा?"

"आप साथ रहेंगे तो मुझे किसी प्रकार का भय नही रहेगा। क्योंकि आप पत्रकार हैं, इसलिये कोई कुछ नही बोल पायेगा।"

बचारे पत्रकार बन्धु के पास गाव जाने के सिवा अन्य कोई चारा न था। आखिर सामने जो खड़ा था, वह सारी खुदाई के वजन का था। फिर उसके समर्थन में जोर भी तो खड़ी थी।

अच्छी खासी भाग-दौड़ और सरपञ्च तथा स्थानीय अधिकारी की लानत-मलानत सुनने के बाद काम जमा हुए, तब कहीं पत्रकार बन्धु का उद्धार हुआ।

हम मानते हैं कि दोस्ती एक नियामत है। फिर भी ऊपर वाले से प्रार्थना है कि वह, किसी को सच्चा और बुद्धिमान दोस्त भले ही न दे मगर नादान की दोस्ती से तो हमारे दुश्मन को भी बचा कर रखे।

○ ○ ○

चक्कर इन्टरव्यू का

उनके सौभाग्य अथवा हमारे दुर्भाग्य से उस समय दरवाजा बंद नहीं था, और वे दरवाजा खटखटाने की जहमत से साफ बच गये।

दरवाजा चौपट खुला था और वे साक्षात् दरवाजे पर खड़े थे। उनके बदन पर खद्दर का कुरता और पायजामा सुशोभित था। लम्बे और घुंघराले बाल उनके सिमटे हुए कंधों पर नागफनियों से बिखरे हुये थे। बायें कंधे पर थैला लटका हुआ था। दायें हाथ में डायरी थी। आंखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा फिट था और दाढ़ी-मूंछ सफाचट। यानी कि वे पूरी तरह बुद्धिजीवी नजर आ रहे थे।

हम उस समय आराम की मुद्रा में पसरे हुये सोफे का उपयोग पलंग की तरह करने में लीन थे, इसलिये हमें उनके आगमन का पता नहीं लगा था। अकस्मात् ही हमारा ध्यान दरवाजे की ओर मुड़ गया। परिणामस्वरूप उनके दर्शन हुये। उन्होंने नमस्कार की मुद्रा में अपने दोनों हाथ जोड़ दिये या यूं कहा जाय कि अपनी डायरी में दूसरा हाथ जोड़ दिया। हमने सौजन्य पूर्ण स्वर में पूछा—"कहिये।"

"जी, बिहारी दुबे जी से मिलना चाहता हूं।" उन्होंने बड़ी आजिजी से कहा।

"अवश्य मिलिए। बंदा हाजिर है।" हमने उन्हें निहाल करते हुये कहा और वे निहाल होकर कमरे के अंदर तशरीफ ले आये। हमने उन्हें सोफा ऑफर किया तो वे झिझकते-झिझकते-से सोफे पर बैठ गये गोया उन्हें डर था कि कहीं उनके बैठने से सोफे को तकलीफ न हो। यद्यपि हमने उनकी काया की सूक्ष्मता देखकर पहले ही इस बात का इत्मीनान कर लिया था।

जब उन्हें इत्मीनान हो गया कि सोफा उनकी उपस्थिति से कतई परेशान नहीं है तो वे सहज नजर आने लगे।

हमें पूरा विश्वास था कि हमने उनके दर्शन पहली बार ही किये हैं। अतः

एक स्वाभाविक उत्सुकता थी हमें उनके आगमन का कारण जानने की। सो पूछ लिया—

'कहिए कैसे आना हुआ ?"

'जी बात यह है कि मैं—मैं अमुक पत्रिका का प्रतिनिधि हूँ और पत्रिका की ओर से आपका इन्टरव्यू लेने आया हूँ।"

'लेकिन जनाब हम कोई मंत्री-वंत्री तो हैं नहीं, जो आप हमारा इन्टरव्यू लेंगे।"

जी, सो तो है मगर आपका स्थान हमारी नजर में मंत्री से भी ऊंचा है। साहित्य-जगत में आपको कौन नहीं जानता।"

यह सुनकर हम बेहद प्रसन्न हुए। व्यंग्यकार को भी साहित्यकार की मान्यता मिल ही गई आखिर। हमारी जानकारी के अनुसार अब तक तो कोई व्यंग्यकार को साहित्यकार मानता ही नहीं था। इसलिये टोह लेने की गरज से हमने कहा—

"भाई साहब ! आपको भ्रम हो गया है शायद ?"

"कैसा भ्रम ?"

'यही कि मैं कोई साहित्यकार हूँ।"

अजी कतई नहीं। मैं यकीन के साथ कह सकता हूँ कि फिलहाल देश में आप जैसा दूसरा कोई साहित्यकार है ही नहीं।"

'जब आप कहते हैं तो मान लेता हूँ। मगर इन्टरव्यू—"

'जी मैं आपका अधिक समय नहीं लूंगा। बस चार-छः बातें आपसे पूछना चाहता हूँ।"

ठीक है पूछिये।" हमने हथियार डाल दिये।

आपने लिखना कब से शुरू किया ?"

लगभग छः साल की उम्र में, यानि जब हमने स्कूल में दाखिला लिया था।"

'जी मेरा मतलब साहित्य सृजन से है।"

'मेरा मतलब भी वही है ! भाई ! अगर मैं स्कूल में दाखिला नहीं लेता तो पढ़ना और लिखना कैसे सीख पाता ? जब लिखना सीख ही नहीं पाता तो साहित्य सृजन की कोई गुंजाइश ही न रहती।"

"ठीक है। यह बताइये आप व्यंग्य ही क्यों लिखते हैं ?"

"आप मेरी पर्सनालिटी तो देख ही रहे हैं, बस इसी कारण व्यंग्य लिखता हूँ।"

"कृपया इसे और स्पष्ट करें।"

"अरे भाई सीधी-सी तो बात है, हमारी इस नाजुक पर्सनालिटी का फायदा उठाकर हर कोई अपनी उपेक्षा कर जाता है। बस अपन कलम का सहारा लेकर उस पर व्यंग्य-बाण चला देते हैं। और आपके अनुसार व्यंग्य साहित्य है, अतः कोई भी उंगली उठाने की हिम्मत नहीं कर पाता।" उन्हें सोफासीन हुए काफी समय हो चुका था और हमने अब तक चाय पानी कराने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया था। शायद इसीलिए, वे कुछ उखड़े-से लगे थे, उनकी गर्दन बार-बार भीतर की ओर उठ रही थी। हमने उनका आशय समझा और श्रीमती जी से चाय बनाने को कह दिया तो वे पुनः प्रफुल्लित नजर आने लगे। फिर उन्होंने अगला प्रश्न दाग दिया।

"अच्छा यह बताइये, आपको हिन्दी का कौन सा लेखक सबसे अधिक आकर्षित करता है ?"

"वह जो किसी बड़ी पत्रिका का संपादक हो और मेरी रचनायें बिना किसी मीन-मेख के छापता हो।"

"व्यंग्य-लेखन से आपको क्या लाभ हुआ ?"

"सींकिया पहलवान होते हुए भी दिग्गजों को लताड़ देता हूँ। फिर भी विरोध करने की हिम्मत किसी की नहीं होती।"

"आप व्यंग्य-लेखन की कौन-सी शैली को अच्छा समझते हैं ?"

"जो सम्पादक को अच्छी लगे।"

"कौन सी बात आपको सबसे ज्यादा कचोटती है ?"

"किसी नासमझ संपादक द्वारा अपनी रचना वापस किया जाना—वह भी 'खेद सहित' की स्लिप के साथ। जबकि उसे इस बात का किंचित भी खेद नहीं रहता।"

इसी बीच चाय आ गई और वे चाय सुड़कने लगे। हम एकटक उनके

चेहरे को देख रहे थे और मन ही मन उस परमात्मा का धिक्कार रहे थे जिसने न जाने कैसे-कैसे नमूने गढकर इस पृथ्वी पर भेज दिए हैं। चाय समाप्त कर उन्होंने प्याली सेन्टर टेबल पर रखते हुए कहा,—"अब मैं साहित्य से हटकर एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। यह बताइये आपको देश का कौन-सा नेता सर्वाधिक प्रिय है ?"

"देश का प्रधानमंत्री। मेरा मतलब है जिस समय जो व्यक्ति देश का प्रधान मंत्री होता है, उस समय वही मेरा सर्वाधिक प्रिय नेता होता है।"

अंत में एक प्रश्न और—"आजकल व्यंग्य उपन्यासों का काफी प्रचलन हो रहा है। आपने कोई व्यंग्य उपन्यास क्यों नहीं लिखा ?"

"क्योंकि अब तक आप नहीं मिले थे।"

"क्या मतलब ?"

"भाई साफ बात है। छोटी-छोटी व्यंग्य रचनायें लिखकर ही इतना पारिश्रमिक मिल जाता था कि उपन्यास लिखने की बात दिमाग में आयी ही नहीं। अब आपने याद दिलाया तो मुझे याद आया।"

"अच्छा अब चलता हूँ आपका काफी समय नष्ट किया, धन्यवाद।"

"जी हां, सो तो है मगर अब और किसी का समय मत नष्ट कीजियेगा।"

सुनकर उनका मुंह भाड सा खुल गया और यही मुँह लिए हुए वे कमरे से बाहर हो गये।

○ ○ ○

जरूरत है एक राम की

जरूरत है एक राम की, जो कलयुगी सीता का वरण कर सके और फिर, रावण की तरह जन-जन की आस्थाओं का हरण कर सके।

आइए आपकी दिक्कत आसान कर दूँ। प्रत्याशी मे अपेक्षित गुणों का बखान कर दूँ। इनसे अपने गुणों की तुलना कीजिये, और खुले दिल से काम्पीटीशन म हिस्सा लीजिए। मगर चिन्ता बिलकुल न कीजिये। गोरे हों या काले हों, भुक्कड़ हों, या पैसे वाले हों, दुबले हों या मोटे हों खरे हों या एकदम खोटे हों, लगड़े-लूले अंधे या काने हों, उम्र मे बच्चे या दादा-नाना हों, सूरत या सीरत पर न जाइये, बस चले आइये, और अपनी किस्मत आजमाइये।

प्रत्याशी, भाषण झाड़ने की कला मे माहिर हो। उसका यह जौहर जग जाहिर हो। स्मगलर हो। डाकू हो या चोर हो, यानि उसके विरोध मे कितना ही शोर हो, हर हाल मे खड़ा रहे, बेशरम के झाड़ या किसी भी मौसम म सीना तानकर खड़ा रहे।

वह दिल का नम न हो, अपने किये पर उसे कोई शर्म न हो, जन पोषण से उसका दूर का भी नाता न हो, अपनी मेहनत की कमाई कभी खाता न हो, बेईमानी उसका धर्म हो, जन-भावनाओं से उल्टा उसका हर कर्म हो, हर हाल मे जो मुस्कुरा सके, दूसरों के लबो से अपने लिये हंसी चुरा सके।

याद रखिये, यह कलियुगी सीता है। भले ही इस समय उसका दामन रीता है, मगर उसे सतयुगी राम नहीं चाहिये। धर्म-ईमानदारी से भरा कोई काम नहीं चाहिये। उसे तो चाहिये ऐसा राम, जो दिन रात उसकी पूजा करे, उसकी आराधना के सिवा न काम दूजा करे, उसकी खातिर अपने वादे से टल सके, सीजन के अनुरूप गिरगिट की तरह रंग बदल सके, मातृभूमि का उसके पास कोई मान न हो, मगर तन पर कमजोर खोल न हो, ताकि वक्त की हर मार

को सह सके, हर हाल मे, सुरक्षित रह सके। और जनता का लूटकर अपने आपको दूध का धुला कह सके। विदेशी आकाओं के सामने अपनी झोली फैला सके और देश के नाम पर लाखों की भीख ला सके, मगर देशवासियों का हक छीनकर खुद खा सके, मौका पड़ने पर देश की दौलत विदेशों मे जाकर लुटा सके।

उसके चेहरे पर हमेशा देशभक्ति का भाव हो, कुछ ऐसा रखरखाव हो, देखने में पूरा संत हो, जिसकी महिमा का न अंत हो, चाहे कैसी भी पतझड आये उसके अधरो पर बसंत हो।

उसे किसी बात का गम न हो, और उसका कोई ऐसा कदम न हो कि जनता राहत की सांस ले सके अथवा कुछ बोलने की जुरत कर सके, किन्तु दिखाने के लिए युवका फाड़कर रो सके। अपने नकली आंसुओं मे धरा को भी डुबो सके। वह लोगो की जुबान सीने का स्वतन्त्र होगा क्योंकि उसके हाथों में पूरा शासन तन्त्र होगा। सही अर्थो मे वह तानाशाह होगा किन्तु दया म जनतन्त्र होगा।

आइये, जल्दी आइये, अगर आपमें दम है, आप की राह मे पलके बिछाये खड़ी है सीता—एक हाथ मे लिए गीता दूसरे हाथ में वरमाला है। पर यह सीता पूरी तरह शैतान की खाला है, अगर आपको पसंद है तो आइये उसके सामने अपना माथा झुकाइये। अगर उसे ठीक लगा तो आपको सर माथे चढायेगी, आपसे लाड़-लडायेगी, जीते जी आप को स्वर्ग में बैठायेगी।

चूंकि वह वरमाला लिए खड़ी है और कलियुगी राम को वरने पर अड़ी है, वह तो अपने मन की करेगी और उसी को वरेगी जो उसे पसंद हो, उसकी शर्तों से रजामंद हो। इसलिये सावधान, अगर अपनी योग्यता मे थोड़ी भी शंका है अथवा वफादारी में ढील की थोड़ी भी आशंका है तो लौट जाइये। इस ओर भूलकर भी न आइये वरना आपका परिणाम? समझ लीजिये, सत्य होगा राम नाम।

o o o

झूठ बोले कौआ काटे

भाई विठ्ठल भाई पटेल की यह पंक्ति "झूठ बोले कौआ काटे " अकसर हमारे कानों में गूंज-गूंज कर झूठ न बोलने की चेतावनी देती रहती। परिणाम-स्वरूप हमने हमेशा सच ही बोलने की प्रतिज्ञा कर ली। किन्तु प्रतिज्ञा करते ही हमारी आंखों के सामने वे सभी दृश्य आ गए जो सच बोलने के परिणाम होते हैं। लीजिए, गौर फरमाइए और निर्णय कीजिए कि आपका क्या करना है —

बचपन, यानि की 4-5 वर्ष की उम्र के बच्चे पप्पू के हाथ में महंगे खिलौने हैं। अचानक ही पप्पू फिसलकर गिर जाता है और खिलौने हाथ से छूटकर पक्के फर्श पर गिरकर चूर-चूर हो जाते हैं। थोड़ी ही देर में पप्पू की माताजी पधार जाती हैं। खिलौने के बारीक सुघड़ टुकड़े बिखरे देखकर उनकी भौंहें कमान बन जाती हैं। वे कड़ककर पूछती हैं—"ये खिलौने किसने तोड़े हैं ?" पप्पू तड़ाक से जवाब देता है, "मैंने !" और परिणाम ? जी हां, माताजी का करारा झापड़—पप्पू के नर्म गाल पर। अगर पप्पू ने कह दिया होता कि ये खिलौने उसके भाई टिंकू ने तोड़े हैं तो न केवल वह झापड़ खाने से बच जाता बल्कि ईमानदार बनकर टिंकू की ताजपोशी का नजारा देखकर आनन्द भी प्राप्त करता।

अब एक स्कूली लड़का, मुरारी आपके सामने है। क्लास चल रही है, मास्टर जी शुद्ध हिन्दुस्तानी मास्टर जी हैं। उनके हाथ में स्वाभाविक तौर पर लपलपाती सटी है। वे एक-एक छात्र से होमवर्क के बारे में पूछ रहे हैं। अधिकांश छात्र होमवर्क करके नहीं लाए हैं और इसका सही कारण बतलाकर सटी का आलिंगन अपनी पीठ पर स्वीकार कर रहे हैं।

उधर मुरारी नफासत के साथ मम्मी की बीमारी का बहाना बनाकर साफ बच जाता है जबकि सच बात तो यह थी कि उसे गिल्ली-डंडे से ही फुरसत नहीं मिली, होमवर्क करता तो कब ?

रात के दस बज चुके हैं। श्रीमती जी दरवाजे पर चण्डी की मुद्रा धारण किये खड़ी हैं। तभी श्रीमान् जी सायकल घसीटते हुये घर पहुँचते हैं जबकि आफिस पाँच बजे ही बन्द हो जाता है। श्रीमती जी का लाल भभूका चेहरा देखते ही पति महोदय ने स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर दिया—"बड़ी मुसीबत है यार इस नौकरी में। अब देखो न, डी० एम० साहब, इन्सपेक्शन करने पहुँच गए। वह भी ठीक पाँच बजे। आखिर इन्सपेक्शन का भी कोई टाइम होता है। भाई जी चले आए पाँच बजे और बमतलब की इन्क्वायरी में नौ बजा दिये। और यह कमबख्त सायकल—इसको तो एसे ही टाइम में पंक्चर होने में मजा आता है। बहुत थक गया हूँ भाई। भूख भी खूब लग रही है। तुम खाना लगाओ तब तक मैं हाथ-मुँह धो लेता हूँ।" बस श्रीमती जी का गुस्सा गायब। कैसी रही? श्रीमती जी संतुष्ट और पोल भी नहीं खुली। आखिर वे यह कैसे बतलाते कि आफिस से तो वे साढ़े चार बजे ही निकल गए थे मगर गर्ल फ्रेंड की मनुहार करते-करते दस बज गए।

आप तो जानते ही हैं, जवानी के दिनों में नहाने की वैसे भी इच्छा नहीं होती, वह भी यदि कड़ाके की ठंड पड़ रही हो तब तो कहना ही क्या? एसे में कौन नौजवान अपने पंख-पुसे बदन को ठंड में अकड़ाना चाहेगा। यदि एसा होता है तो समझ लीजिए या तो वह नौजवान सनकी है अथवा उसके घर में दस-पाँच एसे बुजुर्ग हैं जिनका काम दिन भर घर में बैठकर नौजवान की चंदिया पर तीन-तान बजाने के अलावा कुछ नहीं है।

हाँ तो एेसे ही समय में आप घर से बिना नहाए ही निकल कर, नजदीक के गाँव में अपने किसी एेसे रिश्तेदार के घर पहुँच जाते हैं, जो कट्टर पोंगापंथी है। वह आपसे पूछता है—'भोजन तैयार हो रहा है, तब तक चलिए नदी में स्नान कर आते हैं।" अब एक ही चारा है आपके पास ठंडे पानी से बचने के लिये। फौरन कह दीजिये, "भाई जी! मैं तो घर से नहाकर ही चला था।" अथवा थामिए सच का दामन और कूद पड़िए नदी के बर्फ से ठंडे पानी में और फिर कराइए महीना तक निमोनिया का इलाज। 1

एक और दृश्य—एक कैदी को जज के सामने लाया जाता है। उससे पूछा जाता है, "क्या मिस्टर, तुमने मिस्टर ब का खून किया है ?"

तो साहब, आप शायद उससे भी कह देंगे, भाई सच बोल दे और चढ़ जा सूली पर वरना झूठ बोलने पर काला कौआ काट लेगा।

अब जनाब आप ही बतलाइए, काले कौए का काटना बेहतर होगा या फांसी पर चढ़ जाना ? फिर कौआ काटने न पाए इसके लिए गुलेल काम आ सकती है। अर्थात् झूठ बोलकर भी गुलेल की मदद से, कौए के काटने से बचा जा सकता है किन्तु अगर सच बोले तो ।

○○○

मौत एक गणितज्ञ की

जब हमारी इहलीला समाप्त हुई तो हमें यह जानकर बड़ी कोफ्त हुई कि यह शनिवार का दिन था। शनिवार-यानि हमारी मौत का शोक, मात्र आधे दिन ही मनाया जा सकेगा। फिर भी शोक मनाया तो जाएगा ही यही तसल्ली की बात थी।

हम जब तक जिए हरेक के ताने ही सुनने को मिले थे हमें। बड़ी हसरत थी हमारे कानों को अपनी तारीफ सुनने की मगर जनाब, यह हसरत जीते जी तो कभी पूरी नहीं हुई। बस जो मिलता हमसे मिलकर प्रसन्नता जाहिर करता मगर जो एक बार पीठ मुड़ती, दोबारा उसकी शक्ल देखने को तरस जाते हम।

हमें इस बात पर गर्व था कि हम गणित के विद्वान थे। गणित का कोई भी, कैसा भी सवाल क्यों न हो, हमारे चंगुल में आते ही उसके जवाब को हाजिर होना ही पड़ता। यह बात और है कि हम उसे मजा चखाने के चक्कर में अपना आपा ही खो बैठते। और लोग हमें संसार का सबसे नीरस आदमी मानकर कहते, "इसने गणित क्या पढ़ी काम से ही गया। तौबा! हम तो अपने बच्चों को गणित पढ़ायेंगे ही नहीं।" और हमारे दिल पर बर्छियाँ चल जातीं। बेवकूफ! क्या जाने यह अपने आप में डूब जाना भी कितना भला लगता है।

लेकिन जनाब गणित का अध्यापक होते हुए भी हम जोड़-तोड़ में माहिर नहीं थे। परिणामस्वरूप अध्यापक कालोनी का कोई भी क्वाटर हमें पनाह देने को तैयार नहीं हुआ और हमें शहर के इस मोहल्ले में आकर शरण लेनी पड़ी। इस मोहल्ले के प्रत्येक मकान में (एक हमारे सिवा) एक गजटेड-आउट उर्फ गजटेड अफसर डटा हुआ था। इस तरह हम किसी विलोम की तरह, मखमल में टाट

का पैबन्द बनकर आए थे इस मोहल्ले में। स्वाभाविक था हमारा मेल किसी पड़ोसी से न हो सका। हां, हमारी श्रीमती जी को ताने देने के लिए उपमानों का भंडार अवश्य मिल गया। वे कहतीं—'फ्ला के यहाँ यह है, वह है, और एक आप हैं कि इतने पढ़े लिखे होने के बावजूद पढ़े फारसी बेचे तेल हैं जब देखो तब जब खाली होने का रोना, वगैरह ।'

यही कारण था कि मर जाने के बाद जब यमदूत हम लेने आया तो हमने उससे निवेदन किया-"भाई जी ! अब हम मर तो गए ही हैं। आप मौत से हम ले चलिएगा। बस थोड़ी सी मोहलत दे दो, इस गरीब मास्टर को। सिर्फ अपनी मृत्यु के उपलक्ष्य में आयोजित शोक सभा का नजारा कर लूं।

या तो यमदूत दयालु किस्म का था या फिर उसने कोई शोक सभा नहीं देखी थी। उसने न केवल हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली बल्कि हम हमारे द्वारा बताए स्थानों पर घुमा लाने को भी तैयार हो गया।

हमारा यमदूत संवाद समाप्त हुआ और हमने मुँडेर पर अटके-अटके नीचे की ओर झांका तो पाया कि हमारी घरवाली और बच्चे सभी फूट-फूटकर रो रहे हैं। इस बीच हमारे कुछ रिश्तेदार (जिनमें से अधिकांश को हम पहचान ही न सके) भी आ जुटे हैं और बुलवा पाठकर चिल्ला रहे हैं—हमारा नाम लेकर। यह देखकर हम अपनी नादानी पर बड़ा अफसोस हुआ कि हम क्यों इतनी जल्दी मर गए। साथ ही इस बात का एहसास भी हुआ कि हम वास्तव में बेवकूफ थे जो सारे रिश्तेदारों से समानान्तर रेखाओं की तरह दूर भागते रहे, अपनी सीधी सरल रेखा सी बीवी को कठिन समीकरण मानते रहे। लेकिन लेकिन ।

हमसे उनका दुख देखा नहीं गया तो यमदूत से हमने उस स्कूल चलने के लिए कहा जहां हम पढ़ाते थे।

अगले ही क्षण, यमदूत ने हमें स्कूल के प्रांगण के ऊपर अधर में ला खड़ा किया। हमने देखा कि आज स्कूल के सारे विद्यार्थी (वे भी जिनके दर्शन को स्कूल भी तरसता था) हाजिर थे। बात-बेबात छुट्टी लेकर स्कूल से गायब रहने वाले अध्यापक भी हाजिर थे अर्थात् हमारी मृत्यु का शोक मनाने सब एक साथ आ जुटे थे और हिंदी के अध्यापक माया राम जो हमसे खास तौर से

चिढते थे, शोक प्रस्ताव मे हमारी प्रशंसा म अपना सारा भाषा ज्ञान जिसम मस्का-विज्ञान का निचोड भी शामिल था, बेरहमी के साथ उटेल रहे थे। हमारी आत्मा गदगदायमान हो उठी। हम नृत्य की मुद्रा मे आने ही वाले थे कि यमदूत न ताड लिया और हमारा हाथ पकडकर झटक दिया उसने। हम ताव तो बहुत आया मगर बवस थे। यह सारा कुछ उसी की बदौलत ही तो देखन सुनन को मिल रहा था आखिर।

हमने सावधान होकर अपने दीदे और कान जैसे ही प्रागण की ओर केन्द्रित किये तो मास्टर मायाराम को कहते पाया कि—"मास्टर भोलाराम जी की आत्मा की शाति हेतु हम दो मिनट का मौन रखकर ईश्वर स प्रार्थना करें।" इसी के साथ प्रागण मे सन्नाटा छा गया, किन्तु हमने साफ देखा कि कुछ लडके दूसरी ओर खडी लडकियो की ओर लाइन मारने की फिराक मे ताका-झाकी कर रहे है और अध्यापक कुछ इस तरह मुह सिकोडे खडे हैं मानो किसी ने उन्हे जबरदस्ती कुनैन की आठ दस गोलिया एक साथ खिला दी हो। हमारा जी खट्टा हो गया। हम वहां से लौटन को हुए तो एक बार फिर से अपनी घरवाली को देखने की इच्छा हो आयी। हमन यमदूत से अपने मकान की ओर स होकर चलन को कहा तो वह फौरन हमे हमारे मकान की मुडेर पर ले पहुँचा।

घर का नजारा देखते ही हमारी सिट्टी गुम हो गई क्योकि यहाँ गणित के सारे सिद्धान्त उलटे नजर आए। सारे रिश्तेदार जो अभी थोडी देर पहले गला फाड-फाड कर हमारे नाम को रो रहे थे अब अपने ठहाको से आसमान गुजा रहे थे और हमारी बीवी आगन के एक कोने म अपनी बडी बहन के पास बैठी कह रही थी।

"क्या बताऊ दीदी, वह निकम्मा तो मर गया मगर ये चार औलादें मेरी जान को छोड गया। असल मे मेरी किस्मत ही ..."

इसके आगे सुनने का साहस हममे नही था इसलिये वह तुरन्त उछल कर यमदूत के कन्धे पर सवार हो गये और वह वायु वेग से उड चला।

०००